BAMI -101(N)

भारतीय संगीत का परिचय I – स्वरवाद्य
प्रथम सेमेस्टर

संगीत– स्वरवाद्य में स्नातक (बी0ए0)
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग
मानविकी विद्याशाखा
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

BAMI -101(N)

भारतीय संगीत का परिचय I – स्वरवाद्य

संगीत– स्वरवाद्य में स्नातक(बी0ए0)

प्रथम सेमेस्टर

संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग

मानविकी विद्याशाखा

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,

तीनपानी बाईपास रोड, ट्रान्सपोर्ट नगर के पीछे,

हल्द्वानी – 263139

फोन नं0 : 05946–286000 / 01 / 02

फैक्स नं0 : 05946–264232,

टोल फ्री नं0 : 18001804025

ई–मेल : **info@uou.ac.in**

वेबसाईट : **www.uou.ac.in**

अध्ययन समिति

कुलपति
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

निदेशक
मानविकी विद्याशाखा,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,

प्रो0 पंकजमाला शर्मा
पूर्व विभागाध्यक्षा, संगीत विभाग
पंजाब विश्वविद्यालय,चंडीगढ़

डॉ0 मल्लिका बैनर्जी
संगीत विभाग,
इग्नू, नई दिल्ली

प्रदीप कुमार
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

द्विजेश उपाध्याय
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

जगमोहन परगांई
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

अशोक चन्द्र टम्टा
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

प्रकाश चन्द्र आर्या
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

पाठ्यक्रम संयोजन

प्रदीप कुमार
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

द्विजेश उपाध्याय
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

जगमोहन परगांई
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

अशोक चन्द्र टम्टा
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

प्रकाश चन्द्र आर्या
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

प्रूफ रिडिंग एवं फार्मेटिंग

प्रदीप कुमार
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग, ,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई लेखन

1.	**डॉ विजय कृष्ण**	प्रथम खण्ड़ – इकाई 1
2.	**डॉ0 निर्मला जोशी**	प्रथम खण्ड़ – इकाई 2
3.	**श्री हरीश चन्द्र पन्त**	प्रथम खण्ड़ – इकाई 3
4.	**डॉ0 निर्मला जोशी**	प्रथम खण्ड़ – इकाई 4
5.	**श्री हरीश चन्द्र पन्त**	प्रथम खण्ड – इकाई 5
6.	**डॉ महेश पाण्डे**	प्रथम खण्ड – इकाई 6

कापीराइट : @उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
संस्करण : सीमित वितरण हेतु पूर्व प्रकाशन प्रति
प्रकाशन वर्ष : जुलाई 2023
प्रकाशक : उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल–263139
ई–मेल : books@uou.ac.in

नोट – इस पुस्तक की समस्त इकाईयों के लेखन तथा कॉपीराईट संबंधी किसी भी मामले के लिए संबंधित इकाई लेखक जिम्मेदार होगा। किसी भी विवाद का निस्तारण सत्र न्यायालय–हल्द्वानी अथवा उच्च न्यायालय–नैनीताल में किया जाएगा। इस सामग्री के किसी भी अंश को उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में अथवा मिमियोग्राफी चक्रमुद्रण द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

संगीत– स्वरवाद्य में स्नातक(बी0ए0)
प्रथम सेमेस्टर
भारतीय संगीत का परिचय I – स्वरवाद्य
BAMI -101(N)

इकाई 1– भारतीय संगीत की अवधारणा ।	पृष्ठ 1–10
इकाई 2– परिभाषा (श्रुति, स्वर, सप्तक, वर्ण, अलंकार, , राग, आलाप, लय, लयकारी, मात्रा, ताल, ठेका, आवर्तन, सम, ताली, खाली एवं विभाग)।	पृष्ठ 11–22
इकाई 3– स्वर वाद्य, ताल वाद्य एवं अपने वाद्य का ज्ञान, संरचना एवं मिलाने की विधि ।	पृष्ठ 23–41
इकाई 4– संगीतज्ञों का जीवन परिचय (पं0 वी0एन0 भातखण्डे, पं0 वी0 डी0 पलुस्कर एवं सदारंग–अदारंग)।	पृष्ठ 42–47
इकाई 5– भातखण्डे स्वरलिपि पद्धति का परिचय य राग यमन का परिचय एवं मसीतखानी/विलम्बित गत एवं रजाखानी/द्रुत गत को तोडों सहित लिपिबद्ध करना य राग बिलावल का परिचय एवं रजाखानी/द्रुत गत को तोड़ो सहित लिपिबद्ध करना।	पृष्ठ 48–58
इकाई 6– भातखण्डेताललिपि पद्धति का परिचय य पाठयक्रम की तालों तीनताल एवं चारताल के ठेके एवं उनको दुगुन एवं चौगुन लयकारी सहित लिपिबद्ध करना।	पृष्ठ 59–69

इकाई 1 – भारतीय संगीत की अवधारणा

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 संगीत की उत्पत्ति
1.4 संगीत के तत्व
1.4.1 स्वर 1.4.2 लय
1.5 संगीत की विधाएं
1.5.1 शास्त्रीय संगीत 1.5.2 उपशास्त्रीय संगीत
1.5.3 सुगम संगीत 1.5.4 लोक संगीत
1.6 संगीत के अंग
1.6.1 गायन
1.6.1.1 ख्याल 1.6.1.2 ध्रुवपद
1.6.1.3 ठुमरी, दादरा, कजरी, चैती व होली
1.6.2 वादन
1.6.2.1 तत वाद्य 1.6.2.2 सुषिर वाद्य
1.6.2.3 अवनद्ध वाद्य 1.6.2.4 घन वाद्य
1.6.3 नृत्य
1.7 संगीत की उपयोगिता
1.8 सारांश
1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम (बी0ए0एम0आई0–101(N)) प्रथम सेमेस्टर के प्रथम खण्ड की पहली इकाई है। पहले शायद आपने संगीत के बारे में सुना होगा या आप संगीत को समझते होंगे। दूसरे शब्दों में कहे तो आप किसी ना किसी रुप में संगीत से जुड़े होंगे।

प्रस्तुत इकाई के माध्यम से आप संगीत के बारे में जानेंगे। इस इकाई में संगीत के विभिन्न पहलुओं, जैसे – संगीत की उत्पत्ति, संगीत के तत्व, संगीत की विधाएं, संगीत के अंग व संगीत की उपयोगिता के बारे में बताया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप यह जान पाऐंगे कि संगीत किसे कहते हैं? आप संगीत के अव्यवों का ज्ञान लेकर अपने संगीत पथ में आगे बढ़ सकेंगे तथा यह ज्ञान आपके इस कार्य में सहायक सिद्ध होगा। भविष्य में आपको संगीत की विधा एवं अंगों का अपनी रुचि के अनुसार चयन करने में सुविधा होगी।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :–

- संगीत के विभिन्न पहलुओं से परिचित हो पाऐंगे।
- भारतीय संगीत के प्रति आकर्षित होकर दूसरों को भी संगीत सीखने के लिए प्रेरित कर सकेंगे।
- अपनी रुचि के अनुसार, अपने भविष्य हेतु संगीत के अंग एवं विधा का आसानी से चयन कर सकेंगे।

1.3 संगीत की उत्पत्ति

प्राचीन ग्रन्थों में संगीत को गायन, वादन एवं नृत्य का समग्र रूप माना है, जो कि शारंगदेव के संगीत रत्नाकर ग्रन्थ में दिए गए श्लोक से स्पष्ट है :

"गीतं वाद्यं नृत्यं च त्रयं संगीत मुच्यते"।

वैसे गायन, वादन एवं नृत्य का एक दूसरे से स्वतंत्र अस्तित्व है। परन्तु गायन के साथ स्वरवाद्य जैसे सारंगी अथवा वायलिन एवं अवनद्ध वाद्य – तबला अथवा पखावज संगति के रूप में प्रयोग होता है। प्राचीन समय में इन तीनों का प्रदर्शन एक साथ किया जाता था। नृत्य, गायन, स्वर वाद्य वादन एवं अवनद्ध वाद्य वादन पर आधारित था, परन्तु अब इन तीनों का स्वतंत्र अस्तित्व स्थापित हो चुका है। सामान्यतः संगीत को शास्त्रीय संगीत ही समझा जाता है परन्तु संगीत के अन्तर्गत संगीत की सभी विधाएं – शास्त्रीय संगीत, उपशास्त्रीय संगीत, सुगम संगीत एवं लोक संगीत आती है जिनकी चर्चा संगीत की विधायें, के अन्तर्गत की जाएगी।

भारतीय परम्परा एवं मान्यता के अनुसार संगीत की उत्पत्ति वेदों के निर्माता ब्रह्मा से मानी गई है। ब्रह्मा द्वारा भगवान शंकर को यह कला प्राप्त हुई। भगवान शंकर अथवा शिव ने इसको देवी सरस्वती को दिया, जो ज्ञान एवं कला की अधिष्ठात्री देवी कहलाई। मूर्तियों एवं चित्रों में भी देवी सरस्वती को आपने वीणा एवं पुस्तक के साथ देखा होगा। नारद ने संगीत कला का ज्ञान देवी सरस्वती से प्राप्त कर स्वर्ग में गंधर्व, किन्नर एवं अप्सराओं को इसकी शिक्षा प्रदान की। यहीं से इस कला का प्रचार पृथ्वी लोक पर ऋषियों द्वारा किया गया।

आदि काल में मानव हर्ष एवं उल्लास की अभिव्यक्ति, नृत्य एवं विभिन्न प्रकार की ध्वनियों को आवाज के माध्यम से निकाल कर करता था। मानव के विकास एवं सभ्यता के विकास के साथ इन ध्वनियों की पहचान, संगीत के लिए की गई जिनके विभिन्न प्रयोग के द्वारा संगीत की रचना की जाने लगी।

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि संगीत की उत्पत्ति वेदों के निर्माता ब्रह्मा से मानी गई है। अतः यह कहा जा सकता है कि संगीत का जन्म वैदिक युग में हुआ और इसका व्यवस्थित स्वरूप में विकास भी इसी काल में हुआ। सामवेद की ऋचाओं के गान को सामगान कहा गया। वैदिक ऋचाओं का गान ऋषियों द्वारा किया गया और यहीं से संगीत की विकास यात्रा आरम्भ हुई, जिसका पूर्ण परिचय आप आगे चलकर संगीत का इतिहास, के अध्ययन से प्राप्त करेंगे।

1.4 संगीत के तत्व

स्वर एवं लय संगीत के मूल तत्व हैं। स्वर एवं लय के सुन्दर संयोजन को ही संगीत कहते हैं। विभिन्न स्वर समूहों के विभिन्न लय के प्रयोग से संगीत की रचना होती है। संगीत को समझने के लिए स्वर एवं लय को समझना आवश्यक है। स्वर, ध्वनि से प्राप्त होता है एवं लय पूरी सृष्टि में विद्यमान है। अतः स्वर एवं लय दोनों प्रकृति में विद्यमान हैं। विद्वानों द्वारा प्रकृति से स्वर एवं लय को पहचान कर संगीत की रचना की गई। आइए अब स्वर और लय को समझें :

1.4.1 स्वर – फारसी के विद्वान के अनुसार हजरत मूसा जब पहाड़ों पर प्रकति का आनन्द ले रहे थे, उस समय आकाशवाणी हुई कि अपना असा (फकीरो का डंडा) पत्थर पर मार। पत्थर पर चोट से पत्थर के सात टुकड़े हुए और हर पत्थर से पानी की धारा निकली जिससे सात प्रकार की आवाजें निकली एवं इसके आधार पर हजरत मूसा ने सात स्वरों की रचना की। एक अन्य मत के अनुसार पहाड़ों पर एक मूसीकार नाम का पक्षी होता है जिसकी चोंच में सात सुराख होते हैं। इन्हीं सात सुराखों से निकलने वाली ध्वनि से सात स्वर स्थापित हुए।

संगीत दर्पण के लेखक दामोदर पंडित के अनुसार सात स्वरों की उत्पत्ति पशु–पक्षियों की आवाजों से निम्न प्रकार मानी गई हैः–

मोर	–	**'सा'** अथवा *षडज*
चातक	–	**'रे'** अथवा *ऋषभ*
बकरा	–	**'ग'** अथवा *गन्धार*
कौआ	–	**'म'** अथवा *मध्यम*
कोयल	–	**'प'** अथवा *पंचम*
मेढक	–	**'ध'** अथवा *धैवत*
हाथी	–	**'नी'** अथवा *निषाद*

उपरोक्त मान्यताओं का कोई ठोस ऐतिहासिक एवं वैज्ञानिक सन्दर्भ प्राप्त नहीं होता, परन्तु यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि प्रकृति में व्याप्त ध्वनियों से ही स्वर स्थापित किए गए चाहे वो जल धाराएं हो, नदियों की कल–कल ध्वनियॉ हो अथवा प्रकृति में उपस्थित पशु–पक्षियों की आवाजें।

स्वर, ध्वनि का वह स्वरूप है जिसमें नियमित कंपन होता है। स्वर, कर्णप्रिय अथवा कानों को अच्छा लगता है एवं इसको ही हम संगीत हेतु प्रयोग करते हैं। स्वर को अन्य शब्दों में सांगीतिक ध्वनि भी कह सकते हैं। इसके विपरीत यदि ध्वनि में कंपन अनियमित होते हैं तो यह ध्वनि कर्ण कटु अथवा कानों को अच्छी नहीं लगती है, जिसे हम शोर कहते हैं। इस प्रकार की ध्वनि को असांगीतिक ध्वनि कहते हैं एवं इस प्रकार की ध्वनि को संगीत में प्रयोग नहीं किया जाता है।

स्वर के बाद में विद्वानों द्वारा सात स्वर जिसको सप्तक कहा गया एवं एक सप्तक में बाद में कोमल एवं तीव्र स्वरों की पहचान कर बारह स्वर भी स्थापित किए गए। इसी सप्तक में बाईस श्रुतियॉ भी स्थापित की गई। श्रुति, स्वर का वह सूक्ष्म रूप है जो कि एक दूसरे को सुनकर अलग से पहचाना जा सकता है। शास्त्रीय संगीत के रागों में इन्हीं श्रुतियों का प्रयोग किया जाता है।

1.4.2 लय – लय पूरे बृह्मांड में विद्यमान है। *समय की समान गति को लय कहते हैं।* हर साठ सैकेंड का एक मिनट, हर साठ मिनट का एक घंटा, चौबीस घंटों का एक दिन, 30/31 दिनों का एक महीना व बारह महीनों का एक वर्ष, ये सब निश्चित अन्तराल, जीवन शैली को संचालित करते हैं। हृदय का स्पन्दन व नाड़ी का स्पन्दन भी समान अन्तराल से होता है जिससे जीवन चलता है। इस अन्तराल में व्यवधान अथवा अनियमित्ता आने पर जीवन के संचालन में बाधा उत्पन्न होने लगती है। *यही नियमित अन्तराल ही लय कहलाता है।* स्वर का आधार भी लय ही है क्योंकि *नियमित कम्पन्न संख्या की ध्वनि को स्वर कहा गया है।* सृष्टि का संचालन लय पर आधारित है। संगीत में लय के तीन प्रकार – विलम्बित, मध्य एवं द्रुत माने गए हैं।

विलम्बित लय, वह लय है जिसमें अन्तराल का समय लम्बा होता है, यही अन्तराल का समय दुगुना होने पर मध्यलय एवं मध्यलय का अन्तराल दुगुना होने पर द्रुत लय हो जाती है। मध्यलय स्वाभाविक लय है। हम अपनी स्वाभाविक चाल को मध्यलय कह सकते हैं। उससे आहिस्ता अथवा तेज गति में चलना किसी विशेष कारण से ही होता है। यदि मध्यलय के अन्तराल का समय एक सैकेंड माना जाए तो इस प्रकार दो सैकेंड का अन्तराल विलम्बित एवं आधा सैकेंड का अन्तराल द्रुत लय कहलाएगी।

1.5 संगीत की विधाएं

संगीत की चार विधाओं – शास्त्रीय संगीत, उपशास्त्रीय संगीत, सुगम संगीत एवं लोक संगीत की व्याख्या इस खण्ड में की जाएगी।

1.5.1 शास्त्रीय संगीत – ऐसा संगीत जिसका शास्त्र निश्चित है अर्थात शास्त्र पर आधारित वह संगीत जिसमें राग व लय–ताल शास्त्र के नियमों के आधार पर स्वर एवं लय का सुन्दर संयोजन कर राग को गाया अथवा वाद्यों पर प्रस्तुत किया जाता है, शास्त्रीय संगीत कहलाता है।

गायन

वादन

नृत्य

इसमें रागों के नियमों का पालन करना आवश्यक है तथा रंजकता हेतु नियमों को शिथिल करने का अधिकार नहीं होता है। ये नियम स्थिर होते हैं एवं किसी भी प्रदेश या देश में शास्त्रीय संगीत का प्रयोग समान होता है। उदाहरण के लिए जैसे यदि राग यमन का प्रयोग विलम्बित लय की एकताल में किया जा रहा है तो चाहे देश का कोई भी भाग हो, राग यमन के निश्चित नियम, एकताल की बारहमात्रा एवं ताल को प्रदर्शित करने वाले तबले के निश्चित बोल ही प्रयोग में लाए जाऐंगे एवं इसी प्रकार बाहर के देशों में जैसे– अफगानिस्तान, पाकिस्तान, बांगलादेश आदि में भी शास्त्रीय संगीत का प्रयोग, नियमों के आधार पर ही किया जाएगा। पश्चिमी देशों में तो संगीत की शिक्षा भारतीय संगीत शिक्षकों द्वारा ही दी जाती है। भारत में संगीत की दो शैलीयॉ प्रचलित हैं – उत्तर भारतीय संगीत एवं दक्षिण भारतीय संगीत। इन दोनों शैलियों का शास्त्र भिन्न है एवं ये दोनों अपने शास्त्र पर आधारित है। स्वर एक होने के बावजूद भी दोनों शैलियों में रागों के नामकरण पृथक है, राग प्रस्तुतिकरण का ढंग अलग है एवं ताल शास्त्र के नियम भी पृथक ही हैं। उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत की शैलियों की व्याख्या 'संगीत के अंग' भाग के अन्तर्गत की जाएगी।

1.5.2 उपशास्त्रीय संगीत – जैसा की नाम से ही पता चल रहा है कि इस संगीत में पूर्ण शास्त्र का प्रयोग नहीं है। संगीत का आधार तो शास्त्र है परन्तु इसमें राग शास्त्र के नियमों का कठोरता से पालन करने की आवश्यकता नहीं है। इसमें राग के नियमों को भाव, रस एवं माधुर्य हेतु शिथिल किया जा सकता है। उदाहरण के लिए जैसे उपशास्त्रीय संगीत की रचना यदि पीलू अथवा काफी राग पर आधारित कर प्रयोग की जा रही है तो इसमें रजंकता हेतु इन रागों में प्रयोग होने वाले स्वरों के अतिरिक्त भी स्वर प्रयोग किए जा सकते हैं। इस प्रकार का यह मिश्र स्वरूप, मिश्र पीलू अथवा मिश्र काफी कह कर पुकारा जाता है। उपशास्त्रीय संगीत के अन्तर्गत आने वाली शैली ठुमरी, दादरा, कजरी, चैती एवं होली का परिचय आप *'संगीत के अंग'* के अन्तर्गत प्राप्त करेंगे। उपशास्त्रीय संगीत हेतु मुख्यतः राग पीलू, काफी, देश, खमाज, पहाड़ी, तिलंग, भैरवी आदि रागों का प्रयोग किया जाता है।

ठुमरी

होली

कजरी

1.5.3 सुगम संगीत – यह संगीत पूर्णतया भाव प्रधान है। इसमें हिन्दी के कवियों एवं उर्दू के शायरों द्वारा रचित रचनाओं को स्वर–लय में बांधकर गाया जाता है। गीत, भजन एवं गजल, सुगम संगीत की श्रेणी में आते हैं। संगीत, भक्ति का माध्यम रहा है अतः मुस्लिम धर्म की नात–कव्वाली एवं हिन्दू धर्म की कीर्तन गायन शैली भी सुगम संगीत की श्रेणी में ही आऐंगे।

गजल गीत भजन

1.5.4 लोक संगीत – ग्रामीण परिवेश में, लोक संगीत उन्मुक्त वातावरण में जन्म लेता है। लोक संगीत में मुख्यतया नृत्य एवं गाना–बजाना साथ–साथ होता है। लोक संगीत से प्रदेश विशेष की प्राकृतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का परिचय प्राप्त होता है एवं गीतों का विषय भी इन्हीं पर आधारित होता है। लोक संगीत की धुनों ने शास्त्रीय संगीत एवं उपशास्त्रीय संगीत को प्रभावित किया है। पहाड़ की धुन पर आधारित पहाड़ी राग एवं राजस्थान क्षेत्र का मांड इसके उदाहरण हैं।

कुमाऊँनी गढ़वाली राजस्थानी

1.6 संगीत के अंग

संगीत शब्द सम्यक एवं गीत से मिलकर बना है। सम्यक+गीत = संगीत। सम्यक का अर्थ है भलीभांति एवं गीत का अर्थ है गाना अर्थात भलीभांति गाना संगीत है। जैसा की प्रस्तावना में बताया जा चुका है कि संगीत के अन्तर्गत गायन, वादन एवं नृत्य तीनों आते हैं एवं यही संगीत के अंग हैं। इस भाग में आप तीनों के विषय में अलग–अलग परिचय प्राप्त करेंगे।

भारतीय शास्त्रीय संगीत(गायन, वादन व नृत्य) के शीर्ष कलाकार

1.6.1 गायन – गायन को कंठ संगीत भी कहा जाता है, अर्थात कंठ के द्वारा संगीत उत्पन्न करना। गायन, स्वर, लय एवं पद्य के संयोग से बनता है। पद्य अथवा काव्य का गायन में मुख्य स्थान है। गायन की शैली के अनुसार पद्य अथवा काव्य का चयन किया जाता है। शास्त्रीय गायन विद्या के अन्तर्गत ख्याल एवं ध्रुपद गायन शैली आती है। शास्त्रीय गायन की इन दोनों शैलीयों का वर्णन प्रस्तुत है।

1.6.1.1 ख्याल – ख्याल का अर्थ है कल्पना अतः इसमें राग के नियमों के अन्तर्गत विभिन्न स्वर समूहों की लय व ताल के साथ कल्पना कर, राग का स्वरूप स्थापित किया जाता है। ख्याल गायन में विलम्बित, मध्य एवं द्रुत लय की रचनाऐं गाई जाती हैं। इसमें आलाप – 'अकार' अर्थात 'अ', 'आकार' अर्थात 'आ', 'उकार' अर्थात 'उ' एवं 'इकार' अर्थात 'इ' वर्णों के माध्यम से किया जाता है। राग के भाव व रस के आधार पर पद्य का चयन कर रचनाऐं गाई जाती हैं जिसका अलंकरण आलाप, बोल आलाप, बोल तान, सरगम एवं तानों के प्रयोग से किया जाता है। इन सबका अध्ययन आप आगे की इकाईयों में करेंगे। विलम्बित लय की रचना अथवा बन्दिश को बड़ा ख्याल कहा जाता है। बड़े ख्याल हेतु एकताल, तिलवाड़ा, झूमरा आदि तालों का प्रयोग किया जाता है। मध्य व द्रुत लय की रचना अथवा बन्दिश को छोटा ख्याल कहा जाता है। मध्य लय एवं द्रुत लय की रचना – तीनताल, एकताल, आड़ाचारताल आदि तालों में की जाती है। अति द्रुत लय में 'तराना' गाया जाता है। अति द्रत लय में चूंकि शब्दों का उच्चारण शुद्ध नहीं रखा जा सकता है अतः इसमें निरर्थक शब्द जैसे दानी–तानी, दीम, तन, तनन, देरे, ना द्रीतोम आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है। बड़े एवं छोटे ख्याल के बाद ही तराना गाने की परम्परा है क्योंकि लय शास्त्र के नियमानुसार क्रमशः विलम्बित, मध्य एवं द्रुत लय का प्रयोग किया जाता है। यह कोमल एवं मधुर गायन शैली है। इसमें लय–ताल हेतु अवनद्ध वाद्य तबले का प्रयोग किया जाता है।

अब्दुल करीम खॉ
किराना घराना

उस्ताद अल्लादिया खॉ
जयपुर घराना

उस्ताद अमीर खॉ
इन्दौर घराना

उ0 बड़े गुलाम अली
पटियाला घराना

पं0 भीमसेन जोशी
किराना घराना

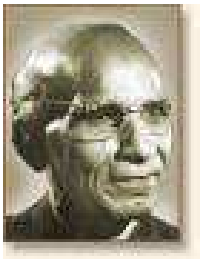
उस्ताद चॉद खॉ
दिल्ली घराना

पं0 डी0वी0 पलुस्कर
ग्वालियर घराना

उस्ताद फैयाज खॉ
आगरा घराना

उ0 मुस्ताक हुसैन खॉ
रामपुर घराना

उ0 वाहिद हुसैन
खुर्जा घराना

1.6.1.2 ध्रुवपद – ध्रुवपद गायन शैली ख्याल से प्राचीन है। ध्रुवपद के बाद ही ख्याल का जन्म हुआ। यह गायन शैली जोरदार एवं गंभीर है। पखावज वाद्य की ध्वनि तबले की अपेक्षा गंभीर होती है इसीलिए ध्रुवपद गायन हेतु पखावज की संगति की जाती है। ध्रुवपद की रचना पखावज पर बजने वाली तालों जैसे चारताल, सूलताल, धमार, तीवरा आदि में की जाती है। इसमें सरगम एवं तानों का प्रयोग नहीं किया जाता है बल्कि इसके स्थान पर दुगुन, तिगुन, चौगुन एवं कठिन लयकारी का प्रयोग कलाकार की सामर्थ के अनुसार किया जाता है। लयकारी का अध्ययन आप आगे करेंगे। इस गायन शैली में ताल के साथ रचना प्रस्तुत करने से पहले नोम–तोम शब्दों के माध्यम से विलम्बित, मध्य एवं द्रुत लय में आलाप प्रस्तुत किया जाता है।

पं0 सियाराम तिवारी

गुन्डेचा ब्रदर्स

उ0 वसीफुद्दीन डागर

1.6.1.3 ठुमरी, दादरा, कजरी, चैती एवं होली – उपशास्त्रीय गायन की विधा की इन शैलियों का प्रमुख उद्देश्य शब्दों के भावों को स्वर एवं लय के विभिन्न प्रयोगों द्वारा प्रकट करना है। ठुमरी विलम्बित लय में एवं दादरा मध्य लय में गाया जाता है। ठुमरी के बाद ही दादरा गाने की परम्परा है। ठुमरी एवं दादरा वियोग एवं श्रृंगार रस लिए हुए होता है। ठुमरी हेतु दीपचन्दी, जत, पंजाबी आदि तालों का प्रयोग किया जाता है एवं दादरा हेतु कहरवा एवं दादरा ताल प्रयोग की जाती है। दादरा एक ताल का नाम भी है।

कजरी एवं चैती, लोक शैली की विधा है जिसको परिष्कृत कर दादरा की भांति गाया जाता है। कजरी वर्षा ऋतु में एवं चैती, पूर्वी अचंल में चैत्र माह में गाई जाती है। होली गायन फाल्गुन माह में होली पर्व के अवसर पर गाया जाता है एवं इसका गायन ठुमरी की भांति किया जाता है। गायन के विद्यार्थी इन सबका विस्तृत अध्ययन आगे चलकर करेंगे।

1.6.2 वादन – भारतीय वाद्यों को प्राचीन ग्रन्थों, भरत के नाट्यशास्त्र एवं शारंगदेव के संगीत रत्नाकर आदि में चार श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है।

1. तत वाद्य **2.** सुषिर वाद्य **3.** अवनद्ध वाद्य **4.** घन वाद्य

1.6.2.1 तत वाद्य – इस श्रेणी के वाद्यों में तारों के द्वारा स्वर उत्पन्न किए जाते हैं। जैसे वीणा, सितार, सरोद एवं तानपुरा। वीणा एवं सितार में धातु(पीतल) की वस्तु को अंगुली में पहनकर तारों पर आघात कर स्वर उत्पन्न किये जाते हैं, इसको मिजराब कहा जाता है। सरोद वाद्य को, नारियल के ऊपर के कठोर भाग के टुकड़े(जवा) के द्वारा बजाया जाता है। तानुपरा को केवल अंगुली से बजाया जाता है। तत वाद्य के अन्तर्गत ऐसे वाद्य भी आते हैं जिनमें तारों पर स्वर, गज (धनुष की आकार जिसमें डोरी के स्थान पर घोड़े की पूंछ के बाल होते हैं) के आघात अथवा घिस कर निकाले जाते हैं। इनको वित्त वाद्य भी कहते हैं, जैसे सारंगी, वायलिन, इसराज आदि। तत वाद्य की श्रेणी में वे सब वाद्य आते हैं जिनमें तार होते हैं। तत वाद्यों पर विलम्बित एवं मध्य लय की रचना प्रस्तुत की जाती है। तत वाद्यों हेतु मसीत खां द्वारा मिजराब अथवा जवा के बोलों से तीनताल की विलम्बित लय हेतु मसीतखानी गत एवं इसी प्रकार मध्यलय हेतु रजा खां द्वारा रजाखानी गत की रचना की गई। इन गतों की वादन शैली को तंत्र वादन शैली कहा जाता है। तत वाद्य के अन्तिम एवं प्रथम तार पर मिजराब एवं जवा के द्वारा अति द्रुत लय में झाला बजाया जाता है। मसीतखानी एवं रजाखानी गतों से पूर्व इन वाद्यों में ध्रुवपद गायन की भांति बिना ताल के आलाप बजाया जाता है। वित्त वाद्यों पर ख्याल गायन शैली का प्रयोग किया जाता है। यद्यपि

कुछ कलाकरों द्वारा वितत वाद्यों पर तंत्र वादन शैली अथवा तंत्रकारी बाज का भी प्रयोग किया जाता है। वित्त वाद्य, गायन की संगति हेतु उपयोगी माने गए हैं।

स्वर वाद्य के विद्यार्थी इन सबका विस्तृत अध्ययन आगे चलकर करेंगे।

तानपुरा

सरोद

रुद्रवीणा

सितार

1.6.2.2 सुषिर वाद्य – इस श्रेणी में स्वर, हवा अथवा फूंक के द्वारा उत्पन्न किए जाते हैं। जैसे बांसुरी, शहनाई, मसकबीन, क्लारनेट, हारमोनियम आदि। बांसुरी एवं शहनाई शास्त्रीय संगीत में प्रयोग किये जाते हैं। मसकबीन व क्लारनेट विदेशी वाद्य हैं। मसकबीन, उत्तरांचल क्षेत्र के लोक संगीत वाद्य की मान्यता प्राप्त कर चुका है।

शहनाई

बांसुरी

हारमोनियम

1.6.2.3 अवनद्ध वाद्य – इस श्रेणी में चमड़े से मढ़े हुए वाद्य आते हैं। मढ़े चमड़े पर हाथ या लकड़ी के आघात से विभिन्न ध्वनियां उत्पन्न की जाती है, जिनको बोल कहा जाता है। जैसे तबला, पखावज, ढ़ोलक, खंजरी, ढ़ोल आदि। अवनद्ध वाद्य संगीत में लय एवं ताल दिखाने के लिए प्रयोग किये जाते हैं। तबले का प्रयोग संगीत की हर विधा में किया जाता है जबकि पखावज का प्रयोग शास्त्रीय संगीत में ही किया जाता है। ढ़ोलक, खंजरी, ढ़ोल आदि लोक शैलियों में प्रयोग किए जाते हैं। अवनद्ध वाद्य के विद्यार्थी इन वाद्यों का सम्पूर्ण ज्ञान आगे चलकर प्राप्त करेंगे।

तबला

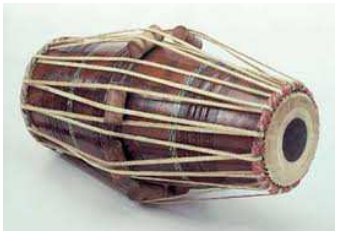
पखावज

1.6.2.4 घन वाद्य – घन वाद्यों में ध्वनि, लकड़ी या किसी वस्तु के आघात से उत्पन्न की जाती है। जैसे मंजीरा, करताल, जलतरंग, घंटातरंग, झांझ आदि।

जलतरंग

मंजीरा

1.6.3 नृत्य – पद अथवा पैर, शारीरिक अंग एवं भाव भंगिमाओं के द्वारा भाव प्रकट करने को नृत्य कहा जाता है। नृत्य के अन्तर्गत, शास्त्रीय नृत्य एवं भाव नृत्य दोनों ही स्वरूप पाए जाते हैं। शास्त्रीय नृत्य में, नृत्य की रचनाओं को पद की थाप, अंग संचालन एवं भाव भंगिमाओं के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। शास्त्रीय नृत्य के अन्तर्गत कत्थक, कथकली, उड़ीसी, भरतनाट्यम, मोहिनीअट्टम, कुचिपुड़ी आदि नृत्य आते हैं। भाव नृत्य में पद का भाव नृत्य के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। इसके अन्तर्गत ठुमरी पर भाव, भजन एवं गजल पर भाव, नृत्य के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। फिल्मों में होने वाला नृत्य भी भाव नृत्य के अन्तर्गत ही आएगा। किसी कथानक का चित्रण, नृत्य के माध्यम से करना भी भावनृत्य ही है।

कत्थक

कथकली

उडीसी

भरतनाट्यम

1.7 संगीत की उपयोगिता

संगीत को मोक्ष प्राप्ति का साधन माना गया है। संगीत से मानसिक शान्ति मिलती है एवं तनाव दूर होता है। अतः संगीत को जीवन शैली का अंग बनाने से जीवन आनन्दमय हो जाता है। यही कारण है कि पश्चिम के लोग भारतीय संगीत को अपनी जीवन शैली का अंग बना रहे हैं। विदेशों में भारतीय संगीत का भरपूर प्रचार एवं प्रसार हो रहा है। भक्ति के लिए भी संगीत का प्रयोग अति उत्तम बताया गया है। भक्ति आन्दोलन में संगीत ने महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया था। इसके अतिरिक्त संगीत जीविका चलाने का साधन भी है। संगीत के गहन अध्ययन एवं शिक्षण प्राप्त करने के पश्चात आप संगीत के व्यवसायिक कलाकार एवं शिक्षक बन सकते हैं। संगीत, विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में एक विषय के रूप में पढ़ाया जा रहा है जहां आपको शिक्षक का पद प्राप्त हो सकता है। व्यवसायिक कलाकारों हेतु तो अनन्त सम्भावनाएं हैं। संगीत को चिकित्सा पद्धति का अंग भी बनाया जा रहा है। विदेशों एवं भारत में भी मानसिक बिमारियों का उपचार संगीत के माध्यम से किया जा रहा है। अतः संगीत विषय के अध्ययन से आप अपना जीवन सुन्दर एवं तनाव रहित बनाऐंगे एवं इसको व्यवसाय के रूप में चुनने का विकल्प भी आपके पास होगा।

अभ्यास प्रश्न

क) लघु उत्तरीय प्रश्न :

1) संगीत की उत्पत्ति पर प्रकाश डालिए।
2) संगीत के अंगों के विषय में लिखिए।
3) वाद्यों के वर्गीकरण को समझाइए।

4) संगीत की उपयोगिता पर टिप्पणी लिखिए।
5) संगीत की विधाओं को संक्षेप में बताइए।
6) शास्त्रीय व उपशास्त्रीय संगीत की एक–एक समानता व एक–एक असमानता लिखिए।
7) स्वर व लय के विषय में लिखिए।

ख) सत्य/असत्य बताइए :

1) बांसुरी तत वाद्य की श्रेणी में आती है।
2) ठुमरी गायन शैली शास्त्रीय संगीत के अन्तर्गत आती है।
3) संगीत रत्नाकर ग्रन्थ के लेखक शारंगदेव हैं।
4) ध्रुवपद गायन शैली शास्त्रीय संगीत के अन्तर्गत आती है।
5) अवनद्ध वाद्य का प्रयोग लय व ताल दिखाने के लिए किया जाता है।

ग) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

1) भारतीय मान्यता के अनुसार संगीत की उत्पत्ति ..... से मानी गई है।
2) ..... और ..... संगीत के मूल तत्व हैं।
3) एक सप्तक में ..... स्वर होते हैं।
4) लय के ..... प्रकार माने गए हैं।
5) भारतीय वाद्यों को ..... श्रेणी में बांटा गया है।
6) कत्थक, कथकली व भरतनाट्यम नृत्य ..... की श्रेणी में आते हैं।
7) भारत में संगीत की ..... पद्धति प्रचलित हैं।
8) राग पहाड़ी व राग मांड़ ..... में अधिक प्रयोग होता है।
9) भजन, गजल व गीत ..... संगीत के अन्तर्गत आते हैं।
10) संगीत के अन्तर्गत ....., ... व .....रूप आते हैं।

1.8 सारांश

इस इकाई के बाद आप संगीत से परिचित हो चुके होंगे। संगीत की उत्पत्ति व इसके मूल तत्वों के विषय में भी आप जान चुके होंगे। संगीत की विधाओं, इसके अंगों का ज्ञान एवं संगीत की उपयोगिता को भी आप भलीभांति समझ चुके होंगे। संगीत से जुड़ी उक्त सभी जानकारी प्राप्त करने के पश्चात आप अपने को भविष्य में संगीत विषय का गहन अध्ययन करने में समर्थ्य पाऐंगे एवं संगीत की विधाओं में भी सरलता से चयन(अपनी रूचि के अनुसार) करने में समर्थ्य हो चुके होंगे।

1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

ख) सत्य/असत्य बताइए :

1) असत्य 2) असत्य 3) सत्य 4) सत्य 5) सत्य

ग) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

1) ब्रह्मा 2) स्वर व लय 3) सात 4) तीन(विलम्बित, मध्य व द्रुत)
5) चार(तत, सुषिर, अवनद्ध व घन) 6) शास्त्रीय नृत्य 7) दो(उत्तर व दक्षिण भारतीय)
8) लोक संगीत 9) सुगम संगीत 10) गायन, वादन व नृत्य

1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1) वसन्त, *संगीत विशारद*, संगीत कार्यालय, हाथरस।
2) सेन, डॉ0 अरूण कुमार, *भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन,* मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल।
3) साभार गूगल।

1.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1) संगीत की उत्पत्ति, तत्व, विधाओं व अंगों का सविस्तार वर्णन कीजिए।

इकाई 2 – परिभाषा(श्रुति, स्वर, सप्तक, वर्ण, अलंकार, राग, आलाप, लय, लयकारी, मात्रा, ताल, ठेका, आवर्तन, सम, ताली, खाली व विभाग)

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 परिभाषाएं
- 2.3.1 श्रुति
- 2.3.2 स्वर
- 2.3.3 सप्तक
- 2.3.4 वर्ण
- 2.3.5 अलंकार
- 2.3.6 राग
- 2.3.7 आलाप
- 2.3.8 लय
- 2.3.9 लयकारी
- 2.3.10 मात्रा
- 2.3.11 ताल
- 2.3.12 ठेका
- 2.3.13 आवर्तन
- 2.3.14 सम
- 2.3.15 ताली
- 2.3.16 खाली
- 2.3.17 विभाग

2.4 सारांश
2.5 शब्दावली
2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची
2.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0 संगीत– तबला में स्नातक (बी0ए0) (बी0ए0एम0आई0–101(N)) प्रथम सेमेस्टर के प्रथम खण्ड की द्वितीय इकाई है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के बाद आप बता सकते हैं कि संगीत किसे कहते हैं। आप भारतीय संगीत के इतिहास से भी परिचित हो चुके होंगे।

प्रस्तुत इकाई में संगीत की विधाओं से सम्बन्धित मूलभूत परिभाषाओं(स्वर, श्रुति, आलाप, सप्तक, राग, आदि) के बारे में विस्तार से बताया जाएगा। जैसे स्वर क्या है? कितने स्वर होते हैं? श्रुति किसे कहते हैं, तथा बाईस श्रुतियों के नाम आदि।

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप संगीत की विधाओं से सम्बन्धित मूलभूत परिभाषाओं को समझ सकेंगे जिससे आपको भारतीय शास्त्रीय संगीत को समझने में आसानी होगी।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप :–

- संगीत में प्रयोग होने वाले मूलभूत शब्दों के अर्थ को समझ सकेंगे।
- भारतीय शास्त्रीय संगीत में इन परिभाषाओं (श्रुति, स्वर, आलाप इत्यादि) के महत्व को समझ सकेंगे।
- इन मूलभूत शब्दों व इनके अन्तर को समझ कर, अपने गायन अथवा वादन में इनका सही प्रयोग कर सकेंगे।

2.3 परिभाषाएं

प्रस्तुत इकाई में संगीत (गायन तथा वादन) से सम्बन्धित निम्न परिभाषाओं को समझाया जा रहा है।

2.3.1 श्रुति – संगीतोपयोगी नाद जो कान को साफ–साफ सुनाई पड़े 'श्रुति' कहलाती है। शास्त्रकार श्रुति की परिभाषा इस प्रकार करते हैं– **" श्रुयते इति श्रुतिः"** अर्थात जो आवाज कान को सुनाई दे वह 'श्रुति' है। ध्यान से देखें तो यह परिभाषा अपने में पूर्ण नही है, क्योंकि संगीतोपयोगी आवाज को छोड़कर और भी आवाजें कान को सुनाई पड़ती है, पर वे श्रुति नहीं है। श्रुति की परिभाषा हम इस प्रकार कर सकते हैं – *"वह संगीतोपयोगी ध्वनि जो कानों को साफ–साफ सुनाई पड़े तथा जो एक–दूसरे से स्पष्ट तथा अलग पहचानने में आ सके, उसे श्रुति कहते हैं।"* अलग तथा स्पष्ट होने के कारण श्रुति की संख्या एक सप्तक में निश्चित हो पाती है। शास्त्रकारों ने एक सप्तक में कुल 22 श्रुतियॉ मानी हैं। 22 श्रुतियों के नाम हैं :–

1.	तीव्रा	**9.**	क्रोधा	**17.**	आलापिनी
2.	कुमुद्वती	**10.**	वज्रिका	**18.**	मदन्ती
3.	मन्दा	**11.**	प्रसारिणी	**19.**	रोहिणी
4.	छन्दोवती	**12.**	प्रीति	**20.**	रम्या
5.	दयावती	**13.**	मार्जनी	**21.**	उग्रा
6.	रंजनी	**14.**	क्षिति	**22.**	क्षोभिणी
7.	रक्तिका	**15.**	रक्ता		
8.	रौद्री	**16.**	संदीपनी		

2.3.2 स्वर – नियमित आन्दोलन संख्या वाली ध्वनि ''स्वर'' कहलाती है। यही ध्वनि संगीत में काम आती है, जो कान को मधुर लगती है तथा चित्त को प्रसन्न करती है। इस ध्वनि को संगीत की भाषा में ''नाद'' कहते हैं। इस आधार पर संगीतोपयोगी नाद 'स्वर' कहलाता है।

पं0 ओंकारनाथ ठाकुर ने अपनी कृति 'संगीतांजली' भाग–चार, पृष्ठ–3 पर स्वर की परिभाषा इस प्रकार दी है – "वह अनुरणानात्मक नाद जो किसी प्रकार के आघात से उत्पन्न होता है, जो रंजक हो, जो श्रोत्रचित्त को सुख देने वाला हो, जो निश्चित श्रुति स्थान पर रहते हुए भी अपनी जगह से ऊपर या नीचे हटने पर विकृत होता है, और आत्मा की सुख–दःख आदि संवेदनाओं को अभिव्यक्त करने में सहायक हो, उसे 'स्वर' कहते है"।

मुख्य स्वर सात होते हैं – **षडज(सा), ऋषभ (रे), गन्धार (ग), मध्यम (म), पंचम (प), धैवत (ध), निषाद (नी)**

स्वरों के प्रकार :–

स्वरों के मुख्य दो प्रकार माने जाते हैं।

1. शुद्ध स्वर
2. विकृत स्वर

1. शुद्ध स्वर – जब स्वर अपने निश्चित स्थान पर रहते हैं, *शुद्ध स्वर* कहलाते हैं। इनकी संख्या 7 मानी गयी है। इनके संक्षिप्त नाम हैं – **सा, रे, ग, म, प, ध, नि**।

2. <u>विकृत स्वर</u> – पॉच स्वर ऐसे होते हैं जो शुद्ध तो होते हैं साथ ही साथ विकृत भी होते हैं। जो स्वर अपने निश्चित स्थान से थोड़ा चढ़े अथवा उतरे हुए होते हैं, वे *'विकृत स्वर'* कहलाते हैं। इस प्रकार विकृत स्वर के भी दो प्रकार होते हैं – **क)** कोमल विकृत **ख)** तीव्र विकृत

जब कोई स्वर अपने निश्चित स्थान(शुद्धावस्था) से नीचा होता है तो उसे *'कोमल विकृत'* कहतें हैं और जब कोई निश्चित स्थान से ऊपर होता है तो उसे *'तीव्र विकृत'* कहते हैं। सप्तक में षड़ज और पंचम के अतिरिक्त शेष स्वर जैसे *रे, ग, ध, नि* स्वर कोमल विकृत तथा *म* तीव्र विकृत होता है। इस प्रकार एक सप्तक में 7 शुद्ध, 4 कोमल और 1 तीव्र स्वर, कुल मिलाकर 12 स्वर होते हैं। इनका क्रम इस प्रकार है :– *स, <u>रे</u>, रे, <u>ग</u>, ग, म, मं, प, <u>ध</u>, ध, <u>नी</u>, नि, सां*

स्वरों को एक और दृष्टिकोण से विभाजित किया गया है – 1. चल स्वर 2. अचल स्वर

<u>1. चल स्वर</u> – वे स्वर जो शुद्ध होने के साथ–साथ विकृत (कोमल अथवा तीव्र) भी होते है उन्हे चल स्वर कहते हैं। जैसे *रे ,ग ध, नी* कोमल और *म* तीव्र।

<u>2. अचल स्वर</u> – जो स्वर सदैव शुद्ध होते हैं, विकृत कभी नहीं होते, अचल स्वर कहलाते हैं। जैसे – सा (षड़ज) और प (पंचम)।

<u>2.3.3 सप्तक</u> – सात स्वरों के समूह को जब एक क्रम में कहा जाता है अथवा लिखा जाता है, तब उसे सप्तक कहते हैं। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि सप्तक में सातों स्वर क्रमानुसार होते हैं। उदाहरण के लिए – सा, रे, ग, म, प, ध, नी यह एक सप्तक हैं। सप्तक में यह ध्यान रखा जाता है कि सातों स्वर एक दूसरे के बाद आऐं। एक सप्तक 'सा' स्वर से 'नि' स्वर तक होता है। अब इस 'नि' के बाद 'सा' आता है जो पहले सा से दुगुना ऊँचा होता है। इस रूप में दूसरा नया सप्तक प्रारम्भ होता है। इस नये सप्तक के सभी स्वर पहले सप्तक के स्वरों से दुगुने ऊँचे होते हैं।

इस प्रकार एक के बाद एक न जाने कितने सप्तक हो सकते हैं, परन्तु विद्वानों ने केवल तीन सप्तक माने हैं। कारण यह है कि साधारणतः मनुष्य की आवाज निम्न तीन सप्तकों के मध्य ही रहती है। केवल कुछ वाद्यों में इन तीनों सप्तकों के अतिरिक्त कुछ ऊपर तथा नीचे स्वर रहते हैं। मुख्य तीन सप्तक हैं :–

1. <u>मन्द्र सप्तक</u> – साधारण आवाज से दुगुनी नीची आवाज को मन्द्र सप्तक की आवाज कहते हैं। साधारण आवाज वह है जिसे बोलने अथवा जिन स्वरों को गाने में हमारे गले पर कोई जोर नहीं पड़ता। इससे दुगुनी नीची आवाज जिसमें स्वर लगाने से हृदय पर जोर पड़ता है, मन्द्र सप्तक की आवाज कहलाती है।

2. <u>मध्य सप्तक</u> – मध्य का अर्थ है बीच का। वह आवाज जो ना तो अधिक नीची होती है और न ही अधिक ऊँची, अर्थात् बीच की आवाज मध्य सप्तक की आवाज कहलाती है।

3. <u>तार सप्तक</u> – मध्य सप्तक से दुगुनी ऊँची आवाज को तार सप्तक की आवाज कहते हैं। इस सप्तक के स्वरों को गाने से हमारे तालु तथा मस्तिष्क पर प्रभाव पड़ता है।

<u>2.3.4 वर्ण–</u> गाने की प्रत्यक्ष क्रिया या स्वरों की विविध चलन को वर्ण कहते हैं. ये चार प्रकार के होते हैं। अभिनव राग मंजरी में कहा गया है, ''गान क्रियोच्यते वर्ण'' अर्थात् गाने की क्रिया को वर्ण कहते हैं। वर्ण – वर्ण का अर्थ है मोड। संगीत मे 4 प्रकार के वर्ण होते हैं।

आरोही वर्ण – केवल आरोह मात्र। तात्पर्य यह कि नीची आवाज को ऊँचाई की ओर ले जाना। फिर चाहे वह एक स्वर तक ही ऊँची क्यों न हो, आरोही वर्ण है।

अवरोही वर्ण – केवल अवरोह मात्र। ऊँची से नीची आवाज ले आना।
स्थाई वर्ण – एक ही जगह पर रुकते हुए कुछ देर तक कायम रहना। जैसे – ममम धध गग रेरे पप आदि।
संचारी वर्ण – ऊपर लिखे हुए तीनो वर्णों का मिला–जुला रूप। जहाँ से मन चाहा वहाँ को आवाज कि दिशा बदल दी या एक ही स्थान पर रुक गये।

2.3.5 अलंकार– संगीत रत्नाकर के अनुसार, नियमित वर्ण समूह को अलंकार कहते हैं। सरल शब्दों में, स्वरों की नियमानुसार उलट–पुलट रचना को अलंकार कहते हैं। । अलंकारों को पलटा भी कहा जाता हैं। संगीत गायन के अभ्यास का प्रथम चरण अलंकार होतें हैं। शास्त्रीय गायन तथा वादन के क्षेत्र मे विद्यार्थियों को सर्वप्रथम अलंकारो का अभ्यास करवाया जाता है। वाद्य के विद्यार्थियों को अलंकार के अभ्यास से वाद्य पर विभिन्न प्रकार से उंगलियां घुमाने की योग्यता हासिल होती है वहीं गायन क्षेत्र से जुड़े लोगो को इस के नियमित अभ्यास से कंठ मार्जन मे विशेष सहायता मिलती है।
अलंकारों की रचना में– प्रत्येक अलंकार में मध्य सप्तक के (सा) से तार सप्तक के (सां) तक आरोही वर्ण होता है जैसे– सारेग, रेगम, गमप, मपध, पधनी, धनीसां व तार सप्तक के (सां) से मध्य सप्तक के (सा) तक अवरोही वर्ण होता है जैसे– सांनिध, निधप, धपम, पमग, मगरे, गरेसा।
उदाहरणस्वरूप आरोही व अवरोही वर्ण साथ अलंकार–
आरोह –सारेगम, रेगमप, गमपध, मपधनि, पधनिसां।
अवरोह –सांनिधप, निधपम, धपमग, पमगरे, मगरेसा।

2.3.6 राग – स्वरों तथा वर्णों की वह अनुपम रचना, जिसे सुनकर आनन्द की प्राप्ति हो, राग कहलाती है। विद्वानों ने राग की परिभाषा इस प्रकार दी है :–

योऽसौ ध्वनि विशेषस्तु स्वरवर्ण विभूषितः।
रंजको जनचित्तानां स च रागः उदाहृतः। मतंग– बृहद्देशी, श्लोक 264।

अर्थात ''ध्वनि की वह विशेष रचना जिसको स्वरों तथा वर्णों द्वारा विभूषित किया गया हो और सुनने वालों के चित्त को मोह ले, राग कहलाती है।'' राग से विभिन्न रसों की अनुभूति होती है। इसलिए राग की परिभाषा में कहा गया है 'रसात्मक राग'। इस रसानुभुति से ही सुनने वालो को आनन्दानुभुति होती है।

प्राचीनकाल में राग के 10 लक्षण अथवा नियम माने जाते थे। इसलिए प्रत्येक राग को उन नियमों के अनुसार गाना पड़ता था तथा नियमों के विरूद्ध राग अशुद्ध माना जाता था। राग के प्राचीन 10 लक्षण अथवा नियम इस प्रकार हैं – ग्रह, अंश, न्यास, अपन्यास, औड़व, षाड़व, अल्पत्व, बहुत्व, मन्द्र और तार। इनमें से कुछ नियमों का जैसे – ग्रह, न्यास या अपन्यास का प्रचार आधुनिक समय में नहीं है। बाकी नियम आजकल भी प्रचलित हैं।

आधुनिक समय में राग के निम्नलिखित नियम या लक्षण माने जाते हैं :–

1. राग को किसी थाट से उत्पन्न होना चाहिए।
2. राग में कम से कम 5 स्वर होने आवश्यक है।
3. राग में आरोह तथा अवरोह दोनों आवश्यक है।
4. राग में वादी–संवादी स्वरों का होना आवश्यक है।
5. राग में रंजकता का होना आवश्यक है। राग की परिभाषा में दिया गया *'रंजको जन चितानां'* अर्थात रंजकता होने से ही सुनने वाले मुग्ध हो सकेंगे।
6. राग में कभी षड़ज स्वर वर्जित नहीं हो सकता। षड़ज स्वर को आधार स्वर माना जाता है।
7. राग में किसी रस की अभिव्यक्ति होनी चाहिए।

राग की जातियां – राग नियमों के अनुसार किसी राग में कम से कम 5 और अधिक से अधिक 7 स्वर हो सकते हैं। रागों में लगने वाले स्वरों की भिन्न–भिन्न संख्याओं के कारण रागों को अलग–अलग तीन विभागों में बॉटा गया है। इन्ही को जातियां कहते हैं।

1. **सम्पूर्ण** – जिस राग में सातों स्वर लगे उसे सम्पूर्ण जाति का राग कहते हैं। जैसे – राग **बिलावल**
2. **षाड़व** – जिस राग में केवल 6 स्वर लगे उसे षाड़व जाति का राग कहते हैं। जैसे – राग **मारवा**
3. **औड़व** – जिस राग में केवल 5 स्वर लगे उसे औड़व जाति का राग कहते हैं। जैसे – राग **भूपाली**

परन्तु जैसा कि राग लक्षणों में आपने जाना कि राग में आरोह तथा अवरोह दोनों होने चाहिए, आरोह तथा अवरोह दोनों स्वरों की संख्या एक न हो तथा कम या अधिक हो, जैसे राग **खमाज** है। इसके आरोह में 'रे' वर्जित होने से 6 स्वर लगते हैं परन्तु अवरोह में 7 स्वर लगते हैं इसलिए आरोह–अवरोह का ध्यान रखते हुए तीन जातियों में से प्रत्येक को तीन–तीन उपजातियों में बांटा गया है जो इस प्रकार है :–

सम्पूर्ण	**षाड़व**	**औड़व**
सम्पूर्ण – सम्पूर्ण	षाडव – सम्पूर्ण	औड़व – सम्पूर्ण
सम्पूर्ण – षाड़व	षाड़व – षाड़व	औड़व – षाड़व
सम्पूर्ण – औड़व	षाड़व – औड़व	औड़व – औड़व

इस तरह कुल मिलाकर 9 जातियां होती हैं, जिनके अन्तर्गत प्रत्येक हिन्दुस्तानी राग रखा जा सकता है। ये जातियां उसके स्वरों की संख्या के साथ इस प्रकार है :–

1. सम्पूर्ण – सम्पूर्ण – आरोह में 7 स्वर अवरोह में भी 7 स्वर
2. सम्पूर्ण – षाड़व – आरोह में 7 स्वर अवरोह में 6 स्वर
3. सम्पूर्ण – औड़व – आरोह में 7 स्वर अवरोह में 5 स्वर
4. षाड़व – सम्पूर्ण – आरोह में 6 स्वर अवरोह में 7 स्वर
5. षाड़व – षाड़व – आरोह में 6 स्वर अवरोह में भी 6 स्वर
6. षाड़व – औड़व – आरोह में 6 स्वर अवरोह में 5 स्वर
7. औड़व – सम्पूर्ण – आरोह में 5 स्वर अवरोह में 7 स्वर
8. औड़व – षाड़व – आरोह में 5 स्वर अवरोह में 6 स्वर

औड़व – औड़व – आरोह में 5 स्वर अवरोह में भी 5 स्वर

2.3.7 आलाप – किसी राग के स्वरों का उसके वादी, संवादी तथा विशेष स्वरों को दिखलाते हुए विस्तार करना और साथ में उसे वर्ण, गमक, अलंकार, आदि से विभूषित करना, उस राग का 'आलाप' कहलाता है। राग का स्वरूप स्पष्ट करने के लिए उसके स्वरों को सजाकर धीमी लय में उसका आलाप करते हैं। आलाप द्वारा गायक अथवा वादक, राग के विशेष स्वरों व राग के स्वरूप को श्रोताओं के सम्मुख प्रस्तुत करता है और अपनी भावनाओं को राग के स्वरों द्वारा अभिव्यक्त करता है।

प्राचीन समय में आलाप करने के कई प्रकार प्रचलित थे, जो रागालाप, स्वस्थान–नियम, आलाप्तिगान, रूपकालाप आदि नामों से पुकारे जाते थे। किन्तु आधुनिक समय में आलाप गायन दो प्रकार से होता है – एक तो गीत गाने से पहले ताल रहित होता है, जिसे गायक नोम–तोम तथा न, न, री, द, त, न, आदि शब्दों द्वारा अथवा आकार में गाता है, तथा दूसरा गीत के साथ ताल–बद्ध होता है जिसे गायक आकार में अथवा गीत के बोलों के साथ गाता है।

आधुनिक आलाप – आधुनिक समय में गीत के पूर्व आलाप गायन का बहुत महत्व है। इस आलाप को हम चार भागों में बांट सकते हैं :–

1.स्थाई – इस भाग में गायक मध्य सप्तक से राग का आलाप शुरू करता है। एक–एक स्वर को बढ़ाते–घटाते हुए मन्द्र या मध्य सप्तक में इसका चलन होता है। अधिक से अधिक मध्य सप्तक के मध्यम या पंचम तक ही इसका विस्तार होता है।
2.अन्तरा – इस भाग में अधिकतर आलाप मध्य सप्तक के गन्धार, मध्यम अथवा पंचम स्वर से आरम्भ होता है तथा उसका विस्तार अधिक से अधिक मध्य सप्तक के निषाद अथवा तार षड़ज तक होता है।
3.संचारी – इस भाग में तार सप्तक के स्वरों का महत्व अधिक होता है। ख्याल गायक तथा वादक इस भाग में आलाप की लय बडा़ देता हैं। इसमें मींड़, आन्दोलन, गमक, खटका, मुर्की आदि का प्रयोग अधिक होता है तथा बीच–बीच में आलापों का सम दिखाया जाता है।
4.आभोग – यह आलाप का अन्तिम भाग होता है। इसमें तार–सप्तक के स्वरों का जहॉ तक सम्भव हो, प्रयोग करते हैं। इस विभाग में आलाप की गति द्रुत कर दी जाती है, जिसमें गमक का प्रयोग बहुत सुन्दर लगता हैं। गायक त, न, न, आदि शब्दों में तथा वादक झाला द्वारा विभिन्न लयकारियों को प्रस्तुत करता है।

2.3.8 लय – समय की समान गति को लय कहते हैं। संगीत में प्रयोग की जाने वाली गति को *'लय'* कहते है। ताल में एक क्रिया और दूसरी क्रिया के बीच की विश्रांति का काल, जो पहली क्रिया का विस्तार है, *'लय'* कहलाता है। गायन, वादन तथा नृत्य में कोई न कोई लय अवश्य होती है।

लय की परिभाषाएं :

- संगीत रत्नाकर के अनुसार – **'क्रियानान्तर विश्रांति लयः'** अर्थात क्रिया के अन्त में विश्रांति को लय कहते हैं।
- अमरकोश के अनुसार – **'क्रिया विश्रांति लयः'** अर्थात दो क्रियाओं के बीच के अन्तराल को लय कहते हैं।

यूं तो लय के अनगिनत प्रकार हैं, परन्तु लय को प्रधानतः तीन लयों में बांटा गया है :–
1. विलम्बित लय – जिस लय की चाल बहुत धीमी होती है उसे विलम्बित लय कहते हैं। जैसे – गायन विधा में बडा़ ख्याल, ध्रुपद, धमार तथा तंत्र वाद्य में मसीतखानी गत आदि।
2. मध्य लय – जो लय न ज्यादा धीमी और न ही द्रुत हो, अर्थात साधारण लय को 'मध्य लय' कहते हैं। जैसे – गायन विधा में छोटा ख्याल, भजन, ठुमरी तथा तंत्रवाद्य में रजा़खानी गत और अधिकतर नृत्य में मध्य लय रहती है।
3. द्रुत लय – जिसकी गति बहुत तेज हो अर्थात द्रुत हो उसे द्रुत लय कहते हैं। यह लय मध्यलय से दुगुनी तथा विलम्बित लय से चौगुनी होती है। जैसे – गायन विधा में तराना, तंत्रवाद्यों में झाला तथा नृत्य में ततकार में द्रुत लय होती हैं।

इन लयों के बीच कोई निश्चित रेखा निर्धारित नहीं की जा सकती, इन्हे सापेक्षिक माना जाना चाहिए।

2.3.9 लयकारी– लयकारी की परिभाषा हम यह दे सकते हैं कि "संगीत में लय के विभिन्न दर्जे करने की क्रिया को लयकारी कहते हैं।" लय के दर्जे करने से तात्पर्य यह है कि कलाकार जब कलात्मक दृष्टि से कभी एक मात्रा में दो, तीन या चार मात्रा तथा कभी दो में तीन, चार में पॉच मात्रा पढ़कर/दिखाकर लय के चमत्कार का प्रदर्शन करता है तो इसी को लयकारी कहते हैं।

लय के समान ही लयकारी के भी विभिन्न प्रकार माने गए हैं परन्तु इसके भी दो मुख्य प्रकार हैं।

एक सीधी लयकारी होती है जिसके अन्तर्गत दुगुन, चौगुन अठगुन आदि आते हैं। दूसरी आड़ की लयकारी होती है जिसके अन्तर्गत तिगुन, आड़, कुआड़ तथा बिआड़ आदि लयकारियाँ आती हैं।

लयकारियों के अन्तर्गत बहुत प्रकार की लयकारियाँ हो सकती हैं परन्तु पाठ्यक्रम के अनुसार आप सीधी लयकारियों को ही जान सकेंगे। विभिन्न तालों में सीधी लयकारी से सम्बन्धित दुगुन, चौगुन को आप जानेंगे। तालों में लयकारी करने से पूर्व आड़ लयकारियों के सम्बन्ध में मात्र एक परिचय जानना आवश्यक सा प्रतीत होता है। सीधी लयकारी के अतिरिक्त अन्य प्रकार की लयकारी को जिसके अन्तर्गत एक मात्रा में डेढ़ मात्रा, तीन मात्रा या सवा मात्रा आदि आते हैं, आड़ की लयकारी कहते हैं। परन्तु व्यापक दृष्टि से वर्तमान में आड़ का व्यापक अर्थ हो चुका है। आड़ का विशेष रूप से यह अर्थ है कि वह लयकारी जिसमें एक मात्रा में डेढ़ या दो मात्रा में तीन मात्रा की लयकारी हो। एक मात्रा में डेढ़ हो या 2 मात्रा में 3 बात एक ही है। इसी प्रकार कुआड़ लयकारी के अन्तर्गत एक मात्रा में सवा मात्रा या 4 मात्रा में 5 मात्रा आती हैं। यह लयकारियाँ कठिन मानी जाती हैं। आप यहाँ तालों में सीधी लयकारी करना जान सकेंगे। तालों के विषय में आप सम्पूर्ण परिचय जान चुके है अब तालों की दुगुन, चौगुन लयकारियाँ जानेंगे।

<u>तीनताल की लयकारियाँ :</u>

<u>ठेका</u>

धा धिं धिं धा	धा धिं धिं धा	धा तिं तिं ता	ता धिं धिं धा	धा
ग	2	0	3	ग

<u>तीनताल की दुगुनः</u>

धा. धिं धिं. धा धा. धिं धिं .धा	धा .तिं तिं .ता ता .धिं धिं .धा
ग	2
. ‿ . ‿ . ‿ . ‿	. ‿ . ‿ . ‿ . ‿

धा धिं धिं धा धा धिं धिं धा	धा तिं तिं ता ता धिं धिं धा	धा
0	3	ग

दुगुन लयकारी में प्रत्येक दो मात्राओं को एक बना दिया जाता है। जैसा आप पहले जान चुके हैं कि दुगुन लयकारी में एक मात्रा में दो मात्रा बोली जाती हैं। देखा जाए तो दुगुन में ताल दो बार पूरे चक्र के साथ बोली जाती है। दुगुन करते समय मात्राएँ एवं विभागों में कोई परिवर्तन नहीं होता है। मात्र दो बोलों को एक मात्रा मान लिया जाता है जैसा कि आपने तीनताल की दुगुन में देखा। दो मात्रा को एक करने के लिए इसके नीचे अर्द्धचन्द्राकार चिन्ह लगा देते हैं।

दुगुन करने की एक और पद्धति भी होती है जिसे 'एक आवर्तन में दुगुन करना' के नाम से सम्बोधित किया जाता है। आप जान चुके हैं कि पहले जो दुगुन की उसमें ताल का चक्र दो बार अर्थात दो आवर्तन में ताल का प्रयोग किया परन्तु एक आवर्तन में दुगुन करने के लिए मात्रा एवं विभाग तो वैसे ही रहेंगे परन्तु एक विशेष जगह से ताल की दुगुन शुरू की जाएगी तथा ताल की दो बार पुनरावृत्ति नहीं होगी। उदाहरण के लिए आप एक आवर्तन में तीनताल की दुगुन को जानेंगे।

एक आवर्तन में तीनताल की दुगुनः

धा धिं धिं धा	धा धिं धिं धा	धा धिं धिं धा धा धिं धिं धा	धा़ तिं तिं़ ता ता़ धिं धिं़ धा	धा
ग	2	0	3	ग

तीनताल की चौगुन लयकारीः

धाधिंधिंधा धाधिंधिंधा धातिंतिंता ताधिंधिंधा	धाधिंधिंधा धाधिंधिंधा धातिंतिंता ताधिंधिंधा	
ग	2	
धाधिंधिंधा धाधिंधिंधा धातिंतिंता ताधिंधिंधा	धाधिंधिंधा धाधिंधिंधा धातिंतिंता ताधिंधिंधा	धा
0	3	ग

एक आवर्तन में तीनताल की चौगुनः

धा	धिं	धिं	धा	धा	धिं	धिं	धा	
र				2				
धा	तिं	तिं	ता	धाधिंधिंधा	धाधिंधिंधा	धातिंतिंता	ताधिंधिंधा	धा
0				3				र

तीनताल की चौगुन 13वीं मात्रा से प्रारम्भ होगी तथा 4 मात्राओं में पूरी चौगुन आ जाएगी। चौथे विभाग की चार मात्राओं में चौगुन पूर्ण रूप में आ जाएगी।

2.3.10 मात्रा – संगीत में समय नापने के लिए जिस इकाई का प्रयोग किया जाता है उसे मात्रा कहते हैं। मात्राओं के आधार पर तालों की रचना होती है। प्रत्येक ताल अपनी निश्चित मात्रा एवं बोलों के आधार पर पहचानी जाती है। जैसे– तीनताल में 16 मात्राएँ व एकताल में 12 मात्राएँ होती हैं। मात्राओं के आधार पर विभिन्न लयकारियाँ की जाती हैं। गीत रचनाओं में विशेष रूप से मात्राओं के आधार पर पता चलता है कि कौन सी रचना किस मात्रा से प्रारम्भ है तथा किस मात्रा में सम तथा खाली है। बंदिशों का आरम्भ भी अलग–अलग मात्राओं से होता है।

गीत रचनाओं एवं बंदिश के विषय में आप जान चुके हैं कि राग की वह शब्द रचना जो विभिन्न तालों में निबद्ध होती है, बंदिश कहलाती है। ताल पक्ष से सम्बन्धित वाद्यों पर बजने वाली बदिंशों के विषय में भी यहाँ बताना आवश्यक है। वाद्यों पर बजने वाली स्वर एवं तालबद्ध रचनाओं को 'गत' कहा जाता है। गत कई प्रकार की होती हैं। गतें विलम्बित एवं मध्य लय में बजायी जाती हैं। इनमें लयकारियाँ भी की जाती है। एक गत में पाँच मात्रा के मुखड़े लेने का भी चलन है। यह गतों की ताल पक्ष सम्बन्धी कुछ जानकारी थी।

2.3.11 ताल – विभिन्न मात्राओं के समूह को ताल कहते हैं। संगीत में केवल मात्रा से काम पूरा नहीं होता है। क्योंकि मात्राएं केवल समय की गति का बोध कराती है। अतः मात्राओं को नापने के लिए ताल बनाए गए। स्वर और लय, संगीत रूपी भवन के दो स्तम्भ हैं। किसी एक की अनुपस्थिति में यह भवन अधूरा रहता है। लय से मात्रा और मात्रा से ताल बने। जैसे *झपताल, एकताल, चारताल, रूपक, तीनताल* आदि।

विभिन्न तालों की रचना गीत के प्रकारों के आधार पर हुई है। जैसे ख्याल के लिए तीनताल, एकताल, झपताल, तिल़वाड़ा आदि; ठुमरी के लिए दीपचन्दी तथा जतताल; ध्रुपद के लिए चारताल, सूलताल, ब्रहमताल आदि व धमार (होली) के लिए धमार ताल बनाया गया। ताल देने के लिए मुख्यतः तबला और पखावज का प्रयोग किया जाता है। ताल को हस्त क्रियाओं से भी प्रदर्शित कर सकते हैं। प्रत्येक ताल के कुछ निश्चित बोल होते हैं, जो तबले अथवा पखावज पर बजाये जाते हैं। बोल धा, ना, धी, किट, तक, गदि गन, तिरकिट आदि वर्णों से निर्मित होते हैं।

<u>ताल की परिभाषाएं</u> :

- कुछ निश्चित मात्राओं के उस समूह को ताल कहते हैं जो धा, ना, धी, धिं, किट, तक, गदि, गन, तिरकिट आदि वर्णों से निर्मित होते हैं, और जो तबला–पखावज आदि वाद्यों पर बजाए जाते हैं।

- आचार्य शारंगदेव के अनुसार :

  तालस्तल प्रतिष्ठायाम् इति धार्तोधञि स्मृतः।
  गीतं वाद्यं तथा नृत्यं यतस्ताले प्रतिष्ठितम्।।

अर्थात गीत, वाद्य एवं नृत्य की प्रतिष्ठा ताल से हुई है तथा प्रतिष्ठा वाचक धातु रुप *तल* से ताल की उत्पत्ति हुई है।

- भरत मुनि के अनुसार – ***"संगीत में गायन व वादन की लंबाई नापने का साधन, ताल है"***।
  "ताल का मुख्य उद्देश्य संगीत में लय कायम करना है"।

2.3.12 ठेका – प्रत्येक ताल के कुछ निश्चित बोल होते है, जिसे ठेका कहते हैं।
उदाहरण : दादरा ताल का ठेका – **धा धी ना । धा तू ना**
झपताल का ठेका – **धी ना । धी धी ना। ती ना। धी धी ना**
ताल की मात्रा, चलन, विभाग आदि में परिवर्तन ना करते हुए किसी ताल के ठेके को विभिन्न प्रकार से बजाने को ठेके की किस्म कहते हैं।
जैसे – **धा धी नाना । धा तू नाना** बजाने से दादरा ताल की एक किस्म होगी।

2.3.13 आवर्तन – किसी भी ताल के ठेके को पूरा एक बार बजाने से एक आवृति पूरी होती है, इसी को आवर्तन कहते हैं। इस प्रकार जितनी बार पूरे ठेके को बजाऐंगे उतने ही आवर्तन पूरे होंगे। उदाहरण के लिए तीनताल का एक आवर्तन :

धा	**धिं**	**धिं**	**धा**	**।**	**धा**	**धिं**	**धिं**	**धा**	**।**	**धा**	**तिं**	**तिं**	**ता**	**।**	**ता**	**धिं**	**धिं**	**धा**	**।**	**धा**
×					**2**					**0**					**3**					×

2.3.14 सम – भातखण्डे तालिपि पद्धति में सम के लिए ष्ष् का चिन्ह लगाया जाता है। सम का अर्थ होता है ताल का आरम्भ। गायन, वादन, नृत्य में सम का सबसे महत्वपूर्ण स्थान होता है। प्रत्येक ताल की पहली मात्रा को सम कहा जाता है। जैसे तीनताल का सम पहली मात्रा पर ही होगा। संगीत के अन्तर्गत सभी विधाओं में सम पर जोर देकर विशेष रूप से सिर हिलाकर सम के स्थान को दर्शाया जाता है। गायक–वादक अपनी प्रस्तुति देते हुए विभिन्न स्वर, लय की क्रियाएँ करते हुए संगतकार के साथ सम पर आकर मिल जाते हैं। सम पर विशेष रूप से ताली होती है, यही पहली मात्रा भी है। ताल का एक निश्चित क्रम होता है। प्रत्येक बार क्रम पूरा होते ही सम आ जाता है, जैसे 10 मात्रा की ताल है तो पहली मात्रा पर सम के बाद क्रम लगातार चलता रहता है तथा प्रत्येक बार अंत में 10 मात्रा के बाद पहली मात्रा पर सम निरन्तर आते रहता है। संगीत में सम एक ऐसा स्थान होता है जिसका आनन्द संगीतकार व श्रोता दोनों लेते हैं।

2.3.15 ताली – सम एवं अन्य विभागों की प्रथम मात्रा पर खाली के अतिरिक्त जहॉ हाथ से आघात द्वारा ध्वनि उत्पन्न करते हैं, उसे ताली कहते हैं। जैसे तीनताल में *1, 5 व 13* पर।

2.3.16 खाली – विभाग की प्रथम मात्रा में जहॉ ध्वनि न करके केवल हाथ बांई या दांई ओर झुका दिया जाता है उसे खाली कहते हैं। इसको 0 से प्रदर्शित करते है। जैसे पंचमसवारी में 8 वीं पर।

2.3.17 विभाग – प्रत्येक ताल अथवा तालबद्ध रचना कुछ छोटे–छोटे भागों में विभाजित होती है, जिन्हे विभाग कहते हैं। प्रत्येक ताल के विभागों की संख्या निश्चित होती है, क्योंकि किसी ताल के बोल के जितने भाग स्वाभाविक ढ़ंग से हो सकते हैं, उतने ही विभाग माने गए। **उदाहरण :** झपताल के ठेके को बोलते समय उसके चार हिस्से स्वतः बन जाते हैं।

1. धी ना
2. धी धी ना
3. ती ना
4. धी धी ना

प्रत्येक विभाग अधिकतर दो, तीन, चार, अथवा पॉच मात्राओं का होता है। विभाग का उद्देश्य यह है कि गायक अथवा वादक को हाथ से ताल देने से यह पता चलता रहे कि वह ताल की किस मात्रा पर है।

अभ्यास प्रश्न

(अ) रिक्त स्थानों की पूर्ति :

1. एक सप्तक में कुल———————— श्रुतियां होती हैं।
2. जब स्वर अपने निश्चित स्थान पर होते हैं तो———————— कहलाते हैं।
3. राग की कुल———————— जातियां होती हैं।
4. सप्तक में ———————— स्वर होते हैं।
5. समान गति को———————— कहते हैं।

(ब) वस्तुनिष्ठ प्रश्न :

1. 'श्रुयते इति श्रुतिः किसकी परिभाषा है ?
   क) नाद ख) आलाप ग) स्वर घ) श्रुति
2. स्वर के कितने प्रकार हैं ?
   क)पॉच ख) दो ग) तीन घ) चार
3. राग नियमों के आधार पर किसी राग में कम से कम और अधिक से अधिक कितने स्वर होने चाहिए ?
   क)5, 7 ख) 3, 5 ग) 2, 7 घ) 4, 5
4. विभिन्न मात्राओं के समूह को क्या कहते हैं ?
   क)लय ख) विभाग ग) ताल घ) आवर्तन
5. किसी ताल के ठेके को पूरा एक बार बजाने को क्या कहते हैं ?
   क) ठेका ख) लयकारी ग) विभाग घ) आवर्तन

(स) लघु उत्तरीय प्रश्न :

1. श्रुति को परिभाषित करें।
2. राग की व्याख्या कीजिए।
3. लय से आप क्या समझते हैं?

2.4 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के उपरान्त आप संगीत, गायन तथा वादन में प्रयोग होने वाले शब्दों की परिभाषा व अर्थ को जान चुके होंगे। गायन के अन्तर्गत प्रयोग होने वाले स्वर, श्रुति, आलाप, सप्तक, इत्यादि के महत्व को जान चुके होंगे। इसके अतिरिक्त इन मूलभूत शब्दों जैसे – श्रुति, स्वर, ताली, खाली, आलाप, राग इत्यादि का अन्तर समझ कर गायन व वादन में उचित प्रयोग कर सकेंगे।

2.5 शब्दावली

1. संगीतोपयोगी	–	संगीत के लिए उपयुक्त
2. कृति	–	रचना
3. श्रोत्रचिन्त	–	सुनने वाले का हृदय
4. संवेदना	–	भावानुभूति
5. आन्दोलन	–	कम्पन
6. वर्ण	–	गाने की किया
7. रंजकता	–	मधुरता।
8. ताल रहित	–	बिना ताल के
9. विभूषित	–	सजाना

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(अ) रिक्त स्थानों की पूर्ति :

1. 22 **2.** शुद्ध स्वर **3.** 9 **4.** 7 **5.** लय

(ब) वस्तुनिष्ठ प्रश्न :

1. (घ) श्रुति **2.** (ख) दो (शुद्ध, विकृत) **3.** (क) 5, 7
4. (ग) ताल **5.** (घ) आवर्तन

2.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. श्रीवास्तव, श्री हरीश चन्द्र, *राग परिचय भाग 1 व 2*, संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद।
2. वसन्त, *संगीत विशारद*, संगीत कार्यालय, हाथरस।
3. परांजपे, श्रीधर, *संगीत बोध*।
4. गोवर्धन, श्रीमती शान्ति, *संगीत शास्त्र दर्पण*।

2.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. *संगीत* मसिक पत्रिका, संगीत कार्यालय, हाथरस।
2. चौधरी, डा0 सुभाष रानी, *संगीत के प्रमुख शास्त्रीय सिद्धान्त,* कनिष्का पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
3. बंसल, डॉ0 परमानन्द, *संगीत सागरिका,* प्रासंगिक पब्लिशर्स, नई दिल्ली।

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. राग तथा आलाप की परिभाषा को विस्तार से समझाइए।
2. श्रुति तथा स्वर को समझाइए।
3. ताल एवं लय का सविस्तार वर्णन कीजिए।

इकाई 3 – स्वर वाद्य, ताल वाद्य एवं अपने वाद्य का ज्ञान (संरचना एवं मिलाने की विधि)

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 भारतीय वाद्यों का वर्गीकरण
3.3.1 तंत्री वाद्य
3.3.2 सुषिर वाद्य
1.3.3 अवनद्ध वाद्य
1.3.4 घन वाद्य
3.4 प्रमुख भारतीय स्वर वाद्यों की संरचना व मिलाने की विधि
3.4.1 स्वर वाद्य – सितार की संरचना, मिलाने की विधि एवं चित्र
3.4.2 स्वर वाद्य – बेला/वायलिन की संरचना, मिलाने की विधि एवं चित्र
3.4.3 स्वर वाद्य – सारंगी की संरचना, मिलाने की विधि एवं चित्र
3.4.4 स्वर वाद्य – तानपुरा की संरचना, मिलाने की विधि एवं चित्र
3.5 प्रमुख भारतीय ताल वाद्यों की संरचना, मिलाने की विधि एवं चित्र
3.5.1 ताल वाद्य तबला की संरचना, मिलाने की विधि एवं चित्र
3.5.2 ताल वाद्य मृदंग/पखावज की संरचना, मिलाने की विधि एवं चित्र
3.6 प्रमुख स्वर वाद्यों तथा ताल वाद्यों का संक्षिप्त इतिहास, कलाकार व उनके चित्र
3.6.1 स्वर वाद्य सितार का संक्षिप्त इतिहास, कलाकार व उनके चित्र
3.6.2 स्वर वाद्य बेला/वायलिन का संक्षिप्त इतिहास, कलाकार व उनके चित्र
3.6.3 स्वर वाद्य सारंगी का संक्षिप्त इतिहास, कलाकार व उनके चित्र
3.6.4 स्वर वाद्य तानपुरा का संक्षिप्त इतिहास व चित्र
3.6.5 ताल वाद्य तबले का संक्षिप्त इतिहास, कलाकार व उनके चित्र
3.6.6 ताल वाद्य मृदंग/पखावज का संक्षिप्त इतिहास, कलाकार व उनके चित्र
3.7 सारांश
3.8 शब्दावली
3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.10 संदर्भ ग्रंथ सूची
3.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.12 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम (बी0ए0एम0आई0–101(N)) के प्रथम सेमेस्टर के प्रथम खण्ड की तृतीय इकाई है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के बाद आप बता सकते हैं कि संगीत किसे कहते हैं? आप भारतीय संगीत के इतिहास व संगीत की विधाओं से सम्बन्धित मूलभूत परिभाषाओं से भी परिचित हो चुके होंगे।

इस इकाई में भारतीय शास्त्रीय संगीत में उपयोग में आने वाले वाद्य यंत्रों का सविस्तार वर्णन किया गया है। इस इकाई में वाद्य यंत्रों की संरचना को भली–भांति समझाया गया है तथा इन्हे किस प्रकार मिलाया जाता है यह भी इस इकाई में वर्णित है।

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान पाएंगे कि भारतीय शास्त्रीय संगीत के वाद्यों को कितनी श्रेणियों में विभाजित किया गया है। इन वाद्यों की संरचना व मिलाने की विधि से भी आप भली–भांति परिचित हो गए होंगे तथा यह भी जान गए होंगे कि कौन सा वाद्य किस श्रेणी में आता है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप :–

- प्रचलित भारतीय शास्त्रीय संगीत वाद्यों को श्रेणीबद्ध(तंत्रीवाद्य, सुषिर वाद्य, अवनद्ध वाद्य तथा घन वाद्य में) कर सकेंगे।
- विभिन्न स्वर वाद्यों की संरचना, उनको मिलाने की विधि तथा उन वाद्यों के प्रसिद्ध कलाकारों के विषय में जान सकेंगे।
- विभिन्न ताल वाद्यों की संरचना, मिलाने की विधि तथा उनके प्रसिद्ध कलाकारों के विषय में जान सकेंगे।
- इन वाद्यों का उपयोग, वर्तमान में संगीत के किन–किन क्षेत्रों में हो रहा है, इसका ज्ञान भी प्राप्त कर सकेंगे।

3.3 भारतीय वाद्यों का वर्गीकरण

भारतीय वाद्य जिनसे स्वर अथवा स्वरावलियां उत्पन्न कर उनका संगीत में उपयोग किया जाता है, स्वर वाद्य कहलाते हैं। जैसे सितार, सरोद, बांसुरी, संतूर व हारमोनियम आदि। इसी प्रकार ऐसे वाद्य, जिनका उपयोग गायन व स्वर वाद्य की प्रस्तुतियों में लय अथवा गति को सुचारू रखने हेतु किया जाता है, ताल वाद्य कहलाते हैं। जैसे – तबला, पखावज व ढोलक आदि।

3.3.1 तंत्री वाद्य – ऐसे वाद्य यंत्र जिनमें तंतु का प्रयोग होता है, जो कि धातु अथवा तांत से निर्मित होते हैं, तंत्री वाद्य कहलाते हैं। इनमें तंतु अथवा तार में कम्पन से ध्वनि उत्पन्न की जाती है। तंत्री वाद्यों के भी दो प्रकार होते हैं।

तत् वाद्य – ऐसे वाद्य जिनमें तार में कम्पन उत्पन्न करने के लिए किसी कोण(प्लक्ट्म) से आघात कर ध्वनि उत्पन्न की जाती है, तंत्री वाद्य कहलाते हैं। जैसे – सितार, सरोद, गिटार आदि।

सितार

सरोद

गिटार(मोहन वीणा)

वितत् वाद्य – जिनमें तार में कम्पन उत्पन्न करने हेतु धनुष/बो का उपयोग किया जाता है उन्हें वितत् वाद्य कहते हैं। जैसे – वायलिन, सारंगी आदि।

वायलिन

सारंगी

3.3.2 सुषिर वाद्य – ऐसे वाद्य जिनमें ध्वनि उत्पन्न करने हेतु वायु का प्रयोग होता है, सुषिर वाद्य कहलाते हैं। जैसे बांसुरी, शहनाई, हारमोनियम आदि।

बांसुरी

शहनाई

हारमोनियम

इस प्रकार तंत्री वाद्य एवं सुषिर वाद्य दोनों ही प्रमुख स्वर वाद्य कहलाते हैं।

3.3.3 अवनद्ध वाद्य – ऐसे वाद्य जिनमें चर्म अथवा खाल को किसी लकड़ी, मिट्टी अथवा धातु से निर्मित खोखले आकार में मढ़ कर हथेली की थाप, उंगलियों अथवा डंडियों के प्रहार से ध्वनि उत्पन्न की जाती है, अवनद्ध वाद्य कहलाते हैं। इनका उपयोग संगीत में लय व ताल के लिए होता है। जैसे तबला, मृदंग/पखावज तथा ढोलक आदि। इन्हें ताल वाद्य भी कहा जाता है। तबला तथा मृदंग/पखावज शास्त्रीय ताल वाद्य हैं।

तबला

मृदंग/पखावज

3.3.4 घन वाद्य – धातु, पत्थर अथवा काष्ठ आदि से निर्मित वाद्य, जिनमें परस्पर आघात से ध्वनि निकलती है, घन वाद्य कहलाते हैं। जैसे मंजीरा, झांझ तथा करताल आदि। इनका उपयोग भी लय के लिए किया जाता है।

परन्तु यदि इसी प्रकार के विभिन्न वाद्यों से स्वरावलियां अथवा स्वर तरंगें निकलती हों तो ये भी स्वर वाद्य की श्रेणी में आते हैं। जैसे जलतरंग अथवा नलतरंग आदि।

जलतरंग

मंजीरा

अभ्यास प्रश्न

अ) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

1. कोण(प्लक्ट्रम) से बजने वाले वाद्य .....कहलाते हैं।
2. धनुष (बो) से बजने वाले वाद्य .....कहलाते हैं।
3. अवनद्ध वाद्यों में.....मढ़ा रहता है।
4. भजन–कीर्तन में उपयोगी घन वाद्य.....है।
5. स्वर वाद्य में .....और.....वाद्य आते हैं।

अ) लघु उत्तरीय प्रश्न :

1. तंत्री वाद्य व सुषिर वाद्य का परिचय दीजिए।

3.4 प्रमुख भारतीय स्वर वाद्यों की संरचना व मिलाने की विधि

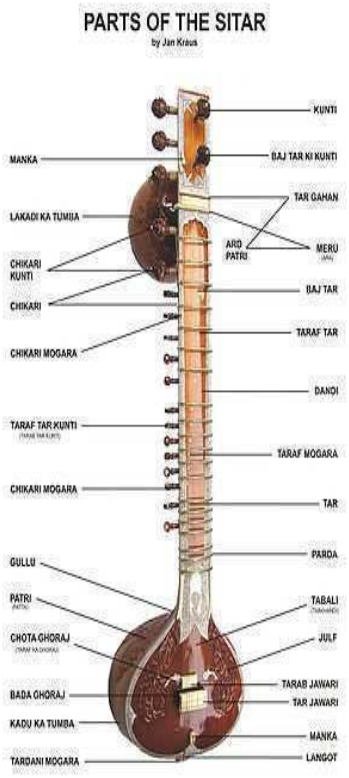

1.4.1 स्वर वाद्य – सितार की संरचना, मिलाने की विधि एवं चित्र

– सितार भारतीय संगीत का अत्यंत लोकप्रिय वाद्य है। पं0 रविशंकर ने इस वाद्य को सम्पूर्ण विश्व में लोकप्रिय बनाया। सितार के प्रमुख अंग निम्न प्रकार हैं :–

तुम्बा – सितार का निचला भाग जो कि गोल लौकी से बना होता है, तुम्बा कहलाता है।

कील – तुम्बे के नीचे के मध्य भाग में कील होती है जिसमें सितार के तारों को बांधा जाता है। इसे मोंगरा भी कहते हैं।

तबली – तुम्बे के सामने के भाग को काट कर उसे लकड़ी की प्लेट से ढ़क दिया जाता है। इस प्लेट को तबली कहा जाता है।

घुड़च – तबली के उपर लगभग मध्य में एक लकड़ी अथवा हाथी दांत की चौकी होती है, जिस पर तारों के लिए स्थान बना रहता है, इसे घुड़च अथवा ब्रिज कहा जाता है। इसकी उपरी सतह जवारी कहलाती है।

डांड – तुम्बे से जुड़ी एक खोखली लम्बी लकड़ी, जिसमें सितार के पर्दे बांधे जाते हैं, डांड कहलाती है।

गुल – सितार का वह भाग जहां तुम्बा व डांड जुड़ते हैं, गुल कहलाता है।

मनका – सितार के तारों को मिलाने के लिए जो मोती तार में पिरोई जाती हैं, उसे मनका कहते हैं।

परदा – सितार की डांड में पीतल अथवा लोहे की सलाइयों के टुकड़े जो सामने की ओर तांत से बांधे जाते हैं, परदे अथवा सुन्दरी कहलाते हैं। उनके ऊपर तारों को दबाने से इच्छित स्वर प्राप्त किए जाते हैं। इनकी संख्या सोलह से चौबीस होती है।

अटी – सितार के ऊपरी सिरे में हाथी दांत की दो पट्टियां होती हैं। पहली पट्टी जिसके ऊपर तार रखे जाते हैं, अटी कहलाती है।

तार गहन – दूसरी पट्टी जिसके बीच में पतले सुराखों से तार गुजरते हैं तथा खूंटियों से बांधे जाते हैं, तार गहन कहलाता है।

खूटियां – सितार के तारों को कसने के लिए डांड के ऊपरी सिरे में जो लकड़ी की बनी चाबियां होती हैं, खूटियां कहलाती हैं।

तरब – अच्छे सितारों में परदों के नीचे कुछ पतले तारों की पंक्तियां होती हैं। जिन्हें छोटी–छोटी खूंटियों से कसने की व्यवस्था होती है तथा एक छोटा घुड़च भी स्थित होता है। इन पतले तारों को तरब के तार कहते हैं। तरब के तारों को ठीक से मिलाने पर स्वर देर तक गूंजता हैं।

मिजराब – लोहे से बना कोण जिसे दाहिने हाथ की तर्जनी में फंसाकर, तारों में आघात करते हैं, मिजराब कहलाता है।
तार – सितार के मुख्य सात तार होते हैं जिन्हें विभिन्न स्वरों में मिला कर वादन किया जाता है।

सितार की संरचना व अंगों का ज्ञान आपको भली–भांति हो गया होगा। अब आपको सितार को मिलाने की विधि बताते हैं।

सितार मिलाने की विधि – सितार में प्रथम तार को बाज का तार कहते हैं। इसके समीप के दो तारों को जिन्हें जोड़ी के तार कहते हैं, को पहली काली के स्वर में मिलाया जाता है। इस प्रकार दूसरे व तीसरे तार से मंद्र **सा** स्वर उत्पन्न होगा। इस स्वर के अनुसार बाज का तार, मंद्र **म** से मिलाया जाता है तथा बाज के तार में सातवें पर्दे में सा स्वर बजा कर इसका परीक्षण किया जाता है जो कि जोड़ी के तारों के सा से एक सप्तक ऊंचा होगा। बाज के तार में प स्वर बजाकर सितार का चौथा तार स्वर **प** में मिलाया जाता है। इस चौथे तार की सहायता से पांचवा तार अति मंद्र **प** में सरलता से मिलाया जाता है। छठा तार मंद्र **सा**(पहली चिकारी) का होता है। सातवां तार(दूसरी चिकारी), बाज के तार में सा स्वर बजाकर मिला लिया जाता है। तरब के तारों को मिलाने के लिए विभिन्न परदों की सहायता से निकलने वाले स्वरों के अुनसार, तरब की खूंटियों को कस कर मिलाया जाता है।

सितार के बोल निकालने का तरीका – सितार के तारों में दो तरह से आघात किया जाता है। इस प्रकार मिजराब के आघात से निम्न बोल बनते हैं :–
दा – जब मिजराब द्वारा बाहर से अन्दर की ओर प्रहार किया जाता है तो 'दा' का बोल निकलता है।
रा – जब मिजराब द्वारा भीतर से बाहर की ओर प्रहार किया जाता है तो 'रा' का बोल निकलता है जो 'दा' का विपरीत बोल है।
दिर – जब 'दा' तथा 'रा' बोल को शीघ्रता से बजाया जाता है तो 'दिर' बोल निकलता है।
द्रा – 'दा' तथा 'रा' को मिला कर शीघ्रता से बजाने से 'द्रा' का बोल निकलता है।

3.4.2 स्वर वाद्य–बेला/वायलिन की संरचना, मिलाने की विधि एवं चित्र – वायलिन एक तंत्री वाद्य है जो वितत् वाद्य की श्रेणी में आता है, क्योंकि यह गज/धनुष से बजने वाला वाद्य है। अपने वर्तमान स्वरूप में तो इसे यूरोपीय वाद्य कहा जाता है। परन्तु इसके प्रमुख भारतीय वाद्यकार इसे भारतीय वीणा का ही एक प्रकार मानते हैं, जो 'कच्छपी वीणा' के अनुरूप माना जाता है। इसको बजाने के लिए प्रयोग में आने वाला गज/धनुष भारत की ही देन बताया जाता है। प्राचीन काल में गज से बजायी जाने वाली 'वीणा' भारत में विद्यमान थी।

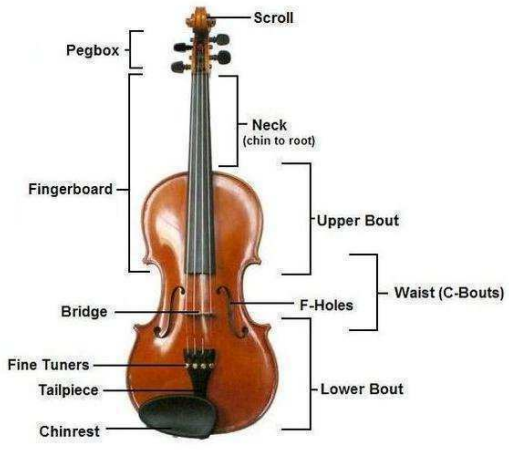

संरचना – यह वाद्य वर्तमान में इटली व जर्मनी में उच्च कोटि का बनाया जाता है। इसके निर्माण में *तुन* या *सागौन* की लकड़ी का प्रयोग किया जाता है जो कि 'सीजन्ड वुड' होती है। धूप तथा वर्षा में जो लकड़ी अनेक वर्षो तक पड़ी रही हो तथा जिस पेड़ से यह प्राप्त की गई हो उसके तने के परीक्षण के उपरान्त इसका चुनाव किया जाता है। इसकी ऊपरी प्लेट **'बेली'** कहलाती है तथा नीचे वाली प्लेट **'बैक'** कहलाती है तथा इन दोनों 'प्लेटों' को वक्राकार पट्टी जिसे **'रिब्ज'** कहते हैं, से लकड़ी की पतली पट्टी **'लाइनिंग'** के माध्यम से जोड़ दिया जाता है। इसके ऊपरी भाग 'बेली' में ध्वनि के कम्पनों को प्रभावी बनाने हेतु दो

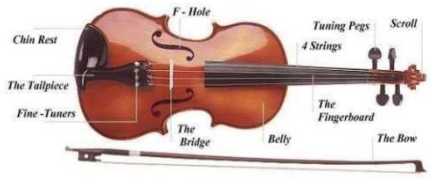

'साउन्ड होल' बने होते हैं जो कि अंग्रेजी अक्षर **'एफ'** आकृति के होते हैं। यह पूरा भाग इसका 'साउन्ड–बॉक्स' होता है। इसके लम्बाई वाले एक छोर में 'रिब्ज' में एक 'बटन' होता है जिसकी सहायता से आबनूसी लकड़ी का एक टुकड़ा जिसे **'टेलपीस'** कहते हैं जुड़ा रहता है। इसमें 4 तारों को पिरोने के लिए छिद्र तथा *'एडजस्टर्स'* लगे रहते हैं। 'बेली' में दूसरे छोर में लकड़ी की पतली डांड जो 'बेली' से जुड़ी होती है **'नैक'** कहलाती है। इसके अंतिम सिरे को **'स्क्रौल'** कहते हैं। इसके समीप तारों को कसने के लिए चार **'पैग्स'** होती है। 'बेली' के 'साउन्ड्स होल्स' के बीच में ब्रिज रहता है जिसके ऊपर से चार तार 'एडजस्टर्स' से चलकर दूसरे छोर में 'पैग्स' के छिद्र में पिरोए जाते हैं। तारों के ही ठीक नीचे आबनूसी लकड़ी की पट्टी होती है जिसे **'फिंगर बोर्ड'** कहते हैं। 'पैग्स' के समीप एक नट से होकर चारों तार जाते हैं। दूसरे छोर में 'टेलपीस' के समीप **'चिनरेस्ट'** होता है, जो खड़े होकर बजाने में सुविधा हेतु लगा रहता है। 'साउन्ड्स होल' के समीप 'बेली' तथा 'बैक' प्लेट्स के मध्य लकड़ी का पतला स्तम्भ खड़ा रहता है जिसे **'साउन्ड पोस्ट'** कहते हैं।

वायलिन को बजाने हेतु लम्बी बैंत की लकड़ी जिसे **'स्टिक'** कहते हैं का प्रयोग होता है। इसके एक सिरे में 'नट' होता है जिससे होकर घोड़े के बाल लम्बाई में दूसरे छोर में 'पाइन्ट' तक तने रहते हैं। इनको नियन्त्रित करने हेतु एक **'स्क्रू'** पहले छोर में 'नट' के समीप होता है। इस पूरे भाग को गज अथवा बो/धनुष कहते हैं। इसके बालों को वायलिन के तारों में घर्षण से ध्वनि उत्पन्न होती है। आप चित्र देखकर आसानी से गज संचालित कर वायलिन से ध्वनि निकाल सकेंगे।

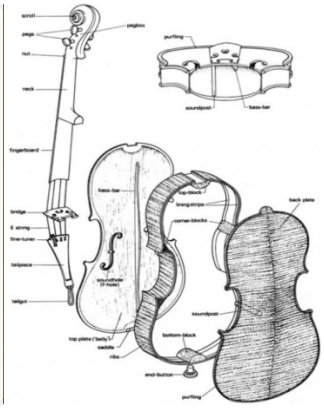

मिलाने की विधि – इसमें चार तार बाएं से दायीं ओर **जी, डी, ए, ई** होते हैं। पहले तीन तार काइल्ड के होते हैं तथा चौथा तार स्टील का पतला तार होता है।

वायलिन मिलाने की तीन प्रमुख विधि है, जिसमें तारों को निम्न प्रकार मिलाते हैं –

तार का नाम		**जी**	**डी**	**ए**	**ई**
प्रथम विधि	–	*प़*	*सा*	*प*	*सा*
द्वितीय विधि	–	*सा़*	*प़*	*सा*	*प*
तृतीय विधि	–	*म़*	*सा*	*प*	*रें*

उत्तर भारत में अधिकतर पहली अथवा तीसरी विधि से तथा दक्षिण भारत में दूसरी विधि से वायलिन के तार मिलाए जाते हैं। पहली तथा तीसरी विधि में वायलिन के दूसरे तार को हारमोनियम के पांचवे काले या पहले सफेद अथवा पहले काले से मिलाया जाता है जो कि 'सा' का तार होता है। इसमें गज/धनुष चलाने पर **सा** की ध्वनि, इसी तार में 'नट' से दो अंगुल ऊपर तर्जनी अंगुली के सिरे से तार को दबाकर तथा गज चलाने पर **'रे'** स्वर प्राप्त होता है। 'रे' से दो अंगुल ऊपर मध्यमा से दबाने पर **'ग'** स्वर तथा उसके ऊपर मध्यमा से सटा कर 'अनामिका' से दबाने पर **'म'** स्वर निकाला जाता है।

इसी प्रकार तीसरे तार को कस कर प में मिलाया जाता है। फिर दूसरे तार में अंगुली संचालन की विधि के अनुसार तीसरे तार में तर्जनी से **'ध'** स्वर, मध्यमा से **'नि'** स्वर तथा अनामिका से **'सां'** प्राप्त होता है।

वायलिन वाद्य में ख्याल, गत, गीत, भजन सभी आसानी से बजाए जा सकते हैं। परन्तु इसके लिए सर्वप्रथम स्वर ज्ञान व अच्छा अभ्यास होना आवश्यक है।

3.4.3 स्वर वाद्य – सारंगी की संरचना, मिलाने की विधि एवं चित्र – स्वर वाद्य सारंगी भारतीय संगीत का अत्यंत महत्वपूर्ण वाद्य है। परन्तु इसके कलाकार धीरे–धीरे दुर्लभ होते जा रहे हैं। यह एक कठिन तथा श्रमसाध्य वाद्य है परन्तु इसकी ध्वनि उतनी ही मधुर तथा मानव कंठ के अत्यधिक निकट है।

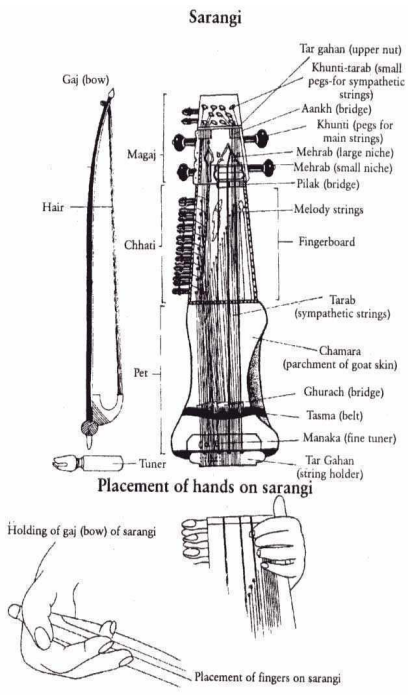

संरचना – सारंगी वाद्य साल, सागौन अथवा तुन की लकड़ी को खोद कर बनाई जाती है। इसका आकार लगभग 24–25 इंच लम्बा होता है। इसका निचला सिरा थोड़ा चौड़ा तथा ऊपरी सिरा थोड़ा संकरा होता है। निचले सिरे का सामने वाला भाग डमरू की आकृति का तथा पिछला भाग चपटा होता है। सामने वाला भाग खाल/चमड़े से मढ़ा होता है। इसे 'मन्धान' कहते हैं। इसके ऊपर घुड़च रखा जाता है जिससे होकर तार दूसरे सिरे पर खूंटियों तक जाते हैं। सारंगी का मध्य भाग इसकी **'छाती'** कहलाता है। इसको बजाने के लिए **गज/धनुष** का प्रयोग किया जाता है, जो कि लकड़ी की डंडी में एक नट की सहायता से घोड़े की पूंछ के बालों से निर्मित होती है। इन बालों में *'बिरौजा'/ रेजिन* घिस कर गज को सारंगी के तारों के ऊपर चलाने से ध्वनि प्राप्त होती है। सारंगी के मुख्य तार तांत के बने होते हैं। अन्य तार स्टील के बने होते हैं, जिन्हें तरब कहते हैं। इनकी संख्या ग्यारह से बाइस तक होती है।

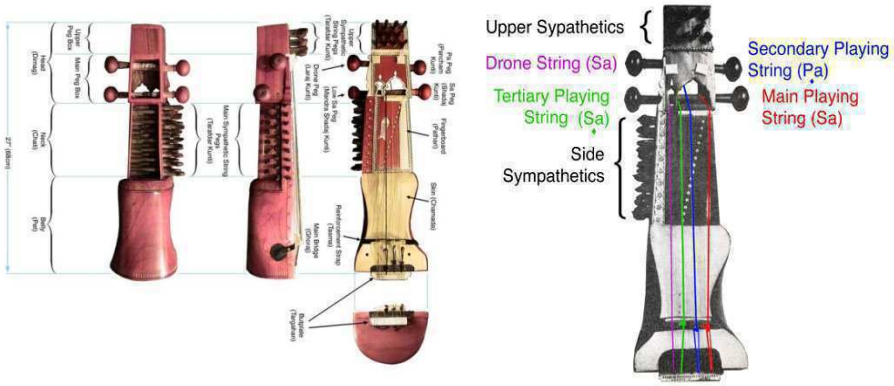

मिलाने की विधि – सारंगी के मुख्य तांत के तारों को **सा, प** तथा **सा** स्वरों में मिलाते हैं। चौथे तार को **ग** अथवा **म** स्वर मे मिलाया जाता है। इनका आधार हारमोनियम का पहला या दूसरा काला होता है। तरबों के तारों को राग में प्रयुक्त होने वाले स्वरों के अनुरूप मिलाया जाता है जिससे अनुगूंज प्राप्त होती है। सारंगी में बाएं हाथ की अंगुलियों तर्जनी, मध्यमा तथा अनामिका के नाखून वाले पृष्ठ भाग को तारों में सरका कर स्वरों की उत्पत्ति की जाती है। इसमें तारों को दबाया नहीं जाता है। गज को दाहिने हाथ से पकड़ कर प्रयोग में लाया जाता है। आप चित्र देखकर यह सीख सकते हैं।

3.4.4 स्वर वाद्य – तानपुरा की संरचना, मिलाने की विधि एवं चित्र – स्वर वाद्य तम्बूरा अथवा तानपुरा भारतीय संगीत में गायन में प्रयुक्त होने वाला प्रमुख संगत वाद्य है। आप किसी भी शास्त्रीय संगीत के गायक अथवा गायिका को अपना गायन प्रस्तुत करते समय, उसको स्वयं अथवा किसी सहयोगी को तम्बूरा बजाते हुए सदैव देखेंगे। यह अत्यंत प्राचीन वाद्य है।

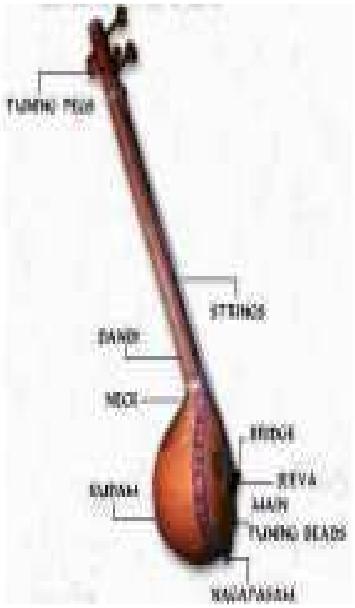

तम्बूरा/तानपुरा की संरचना – तम्बूरा/तानपुरे को अथवा इनके चित्र को देख कर आप समझ जाऐंगे कि तम्बूरे का निचला गोलाई वाला भाग **तूम्बा** कहलाता है। यह भाग गोल लौकी का बना होता है। इसे सुखा कर साफ करके प्रयोग में लाते हैं। यह खोखला होता है।

तबली : तूम्बे के सामने के भाग को काटकर सपाट बना दिया जाता है तथा उसके ऊपर लकड़ी से निर्मित गोलाकार प्लेट रख दी जाती है जिसे तबली कहते हैं।

घुड़च या ब्रिज : तबली के ऊपर लगभग मध्य में हाथी दांत अथवा प्लास्टिक की सफेद सतह वाली लकड़ी की एक छोटी चौकी होती है, जिसे घुड़च अथवा ब्रिज कहते हैं।

कील अथवा मोंगरा : तूम्बे के आधार में एक कील लगी होती है, जिसमें तम्बूरा के तार बांधे जाते हैं। इसे मोंगरा या लंगोट भी कहते हैं।

गुल : तूम्बे के ऊपरी हिस्से को जहां पर डांड़ से जोड़ा जाता है उसे 'गुल' कहते हैं।

डांड : यह तम्बूरे का मध्य व ऊपरी लम्बा भाग होता है। यह लकड़ी को पोलीश कर बनाया जाता है। इसका निचला सिरा गुल के स्थान पर तूम्बे से जुड़ा रहता है। ऊपर के भाग में चार खूंटियां होती हैं। घुड़च या ब्रिज से होकर खूंटियों तक चार तार डांड के ऊपर तने रहते हैं।

अटी या अटक : तम्बूरे के तार डांड के ऊपरी सिरे में खूंटियों से पहले हाथी दांत से निर्मित एक खड़ी पट्टी पर बराबर अंतर पर रखे जाते हैं, जिसे अटी या अटक कहते हैं।

तार गहन : अटी के समीप ही ऊपर की ओर हाथी दांत से निर्मित एक अन्य प्लेट होती है जिसमें चार छिद्र बराबर दूरी में होते हैं। इनसे होकर तार खूंटियों में पहुंचते हैं, इसे तार गहन कहते हैं।

खूंटियां : तारों को कसने के लिए तम्बूरे में डांड के ऊपरी सिरे में चार खूंटियां होती हैं।

मनका : तारों को मिलाने के पश्चात सूक्ष्म अंतर को ठीक करने हेतु मनकों/मोतीयों को आगे–पीछे सरकाया जाता है। उनको घुड़च अथवा ब्रिज तथा कील के मध्य पिरोया जाता है।

मिलाने की विधि : तम्बूरे या तानपुरे दो आकार में प्राप्त होते हैं – बड़े आकार का तम्बूरा पुरूषों के लिए तथा छोटे आकार का महिलाओं के लिए प्रयोग में आता है। पुरूषों के तम्बूरे में पहला व अंतिम तार पीतल का तथा मध्य के दोनों तार स्टील के होते हैं। महिलाओं के तम्बूरे में अंतिम तार पीतल का तथा अन्य तीनों स्टील के होते हैं।

तम्बूरे के मध्य के दोनों तारों/जोड़ी के तारों को मध्य सा मे मिलाया जाता है। पुरूषों के लिए हारमोनियम का पहला काला तथा महिलाओं के लिए चौथा काला स्वर सामान्यतः **'सा'** होता है। प्रथम तार पंचम का तार कहलाता है। इसे मंद्र पंचम में मिलाया जाता है तथा अंतिम तार मंद्र षडज में मिलाया जाता है। इसे सामान्य भाषा में 'खरज' भी बोला जाता है।

तम्बूरा बजाने के भिन्न–भिन्न तरीके हैं। भूमि में अथवा गोद में उर्ध्व रख कर या भूमि में लिटा कर। इसके पंचम के तार को मध्यमा से तथा शेष तीन तारों को तर्जनी से छेड़ा जाता है। अभ्यास से शीघ्र ही गायन के अनुरूप एक वातावरण उत्पन्न हो जाता है। प्रथम तार को पंचम के अतिरिक्त मध्यम अथवा निषाद स्वर में रागों के अनुरूप मिलाया जाता है।

अभ्यास प्रश्न

अ) एक शब्द में उत्तर दीजिए :

1) सितार बजाने के लिए उपयोग में आने वाला कोण क्या कहलाता है?
2) सितार में 'दा' तथा 'रा' बोलों को शीघ्रता से बजाने पर क्या बोल निकलता है?
3) वायलिन का भारतीय नाम क्या है?
4) तानपुरा अथवा सितार की तबली के ऊपर रखी जाने वाली लकड़ी की हाथी दांत लगी चौकी को क्या कहते हैं?
5) तानपुरे के जोडी के तारों को किस स्वर में मिलाया जाता है?
6) वायलिन के चारों तारों के नाम बताइए।

ब) लघु उत्तरीय प्रश्न :

1) अपने वाद्य की संरचना को संक्षेप में बताइए।
2) अपने वाद्य को मिलाने की विधि का वर्णन कीजिए।

3.5 प्रमुख भारतीय ताल वाद्यों की संरचना, मिलाने की विधि एवं चित्र

भारतीय संगीत में प्रमुख रूप से शास्त्रीय गायन, वादन व नृत्य की संगति हेतु तथा एकल/सोलो वादन हेतु जो ताल वाद्य प्रयोग में आते हैं वे हैं तबला, पखावज अथवा मृदंग तथा

ढोलक। लोक संगीत में अन्य प्रकार के ताल वाद्य प्रयोग में आते हैं। तबला व ढोलक का उपयोग भी लोक संगीत में किया जाता है।

3.5.1 ताल वाद्य तबला की संरचना, मिलाने की विधि एवं चित्र – तबला भारतीय संगीत का अत्यंत लोकप्रिय वाद्य है। तबला, दाहिना और बांया दो अलग–अलग संरचनाओं का संयुक्त रूप है। सामान्यतः दाहिने को तबला तथा बांए को डग्गा कहते हैं। दोनों संरचनाओं को एक साथ 'तबला जोडी' कहा जाता है।

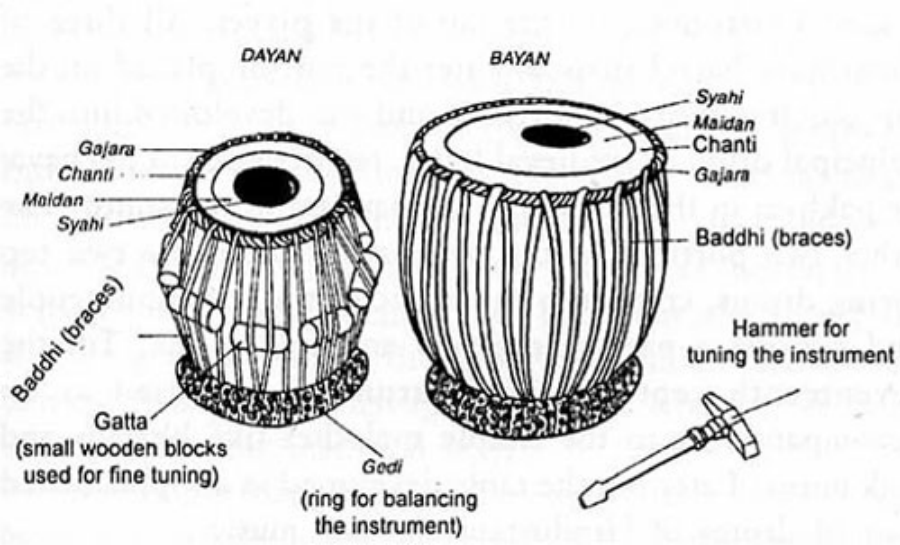

दाहिने (तबला) की संरचना :

काठ – विजय साल, सागौन, आम अथवा कटहल की लकड़ी का तना लगभग आधा खोखला कर यह बनता है। यह बेलनाकार आकृति का होता है जिसकी ऊपरी गोलाई लगभग छः इंच तथा नीचे की गोलाई लगभग नौ इंच होती है।

पूड़ी – इस काठ के मुंह को चमड़े से मढ़ दिया जाता है जिसे पूड़ी कहते हैं। यह बकरे की खाल से निर्मित होती है तथा लकड़ी के ऊपरी खुले मुंह पर बद्दी से कसी रहती है।

गजरा – पूड़ी के चारों ओर चमड़े की मोटी किनार होती है जिसे गजरा कहते हैं। इसके सोलह छिद्रों में से बद्दी प्रवेश करती है।

चांटी – पूड़ी के अन्दर की ओर किनारे–किनारे लगी चमड़े की पट्टी को चांटी कहते हैं।

स्याही – चमड़े की पूड़ी के बीचों–बीच चांटी से एक इंच भीतर की ओर चन्द्राकार गोलाई में मसाले(लौह चूर्ण) की काली आकृति होती है जिसे स्याही कहते हैं। स्याही की पतली सतह से ऊंचा स्वर तथा मोटी सतह से नीचा स्वर प्राप्त होता है। स्वर का ऊंचा–नीचा होना तबले की पूड़ी के व्यास पर भी निर्भर होता है।

लौ या लव – चांटी और स्याही के बीच खाली स्थान को लव या मैदान कहते हैं।

बद्दी – चमड़े की लम्बी पट्टियां जिनसे पूड़ी कसी रहती है, बद्दी कहलाती है।

गट्टा – दाहिने तबले की बद्दी के बीच में लकड़ी के तीन इंच लम्बे बेलनाकार आठ गुटके फंसाए जाते हैं जिन्हें गट्टे कहते हैं। गट्टे खिसकाने पर तबले का स्वर बदल जाता है।

गुड़री – तबले के निचले हिस्से या पैंदे पर एक चमड़े का घेरा होता है जिसके सहारे तबला जमीन पर टिका रहता है, गुड़री कहलाता है। तबले की बद्दियाँ पूड़ी और गुड़री के मध्य कसी रहती है तथा बीच में गट्टे फंसे रहते हैं।

बांया(डग्गा) की संरचना – डग्गा या बांया मिट्टी, स्टील अथवा तांबे का बना होता है। अब मिट्टी के बांए का प्रयोग कम दिखाई देता है। यह चौड़े मुंह का अर्द्ध गोलाकार आकृति का होता है, इसे कूड़ी भी कहते हैं।

पूड़ी – दाहिने तबले की तरह इसके मुंह में भी पूड़ी कसी रहती है जो ज्यादा विस्तृत होती है। इसमें भी चांटी, लव और स्याही, दाहिने तबले की तरह होती है।
गोट – पूड़ी में चारों तरफ अन्दर की ओर लगी पट्टी गोट कहलाती है।
स्याही – पूड़ी में ऊपर की ओर चंद्राकार काली आकृति को स्याही कहते हैं जिसमें मसाले(लौह चूर्ण) का प्रयोग होता है।
लव – चांटी और स्याही के बीच खाली स्थान को लव अथवा मैदान कहते हैं।
गजरा – दाहिने के समान डग्गे में भी चमड़े की बनी हुई मोटी किनार को गजरा कहते हैं।
डोरी – पूड़ी को कसने के लिए साधारणतया चमड़े की बद्दी होती है। परन्तु बांए में डोरी का प्रयोग भी कसने के लिए दिखाई देता है जिसमें छल्ले लगे होते हैं।
गुड़री – डग्गे की पेंदी में चमड़े का घेरा होता है, जिसे गुडरी कहते हैं। पूड़ी तथा गुडरी के मध्य बद्दी या डोरी कसी रहती है।

तबला मिलाने की विधि – तबला मिलाने के लिए हथौड़ी की आवश्यकता होती है। सर्वप्रथम गट्टों को चारों तरफ से ठोककर इच्छित स्वर में मिला लिया जाता है फिर सूक्ष्म अंतर को ठीक करने के लिए गजरे को ठोक कर मिला लिया जाता है।

पुरूषों के कण्ठ संगीत तथा सितार, सरोद के लिए सामान्यतः पहली काली का तबला रखा जाता है। महिलाओं के गायन हेतु चौथा या पांचवीं काली का तबला रखा जाता है। छोटे मुंह वाले तबले ऊंचे स्वर तथा चौड़े मुंह वाले तबले नीचे स्वर में बोलते हैं।

बांए को दाहिने तबले के अनुकूल बनाने हेतु केवल गजरे को ठोक कर व्यवस्थित कर लिया जाता है।

3.5.2 ताल वाद्य मृदंग/पखावज की संरचना, मिलाने की विधि एवं चित्र – भारतीय संगीत में गम्भीर गायन – ध्रुवपद/धमार तथा सुरबहार आदि वाद्य यंत्रों के साथ ही साथ नृत्य की संगति के लिए भी पखावज अथवा मृदंग का प्रयोग होता रहा है। पखावज अथवा मृदंग प्राचीन ताल वाद्यों में से है। इसका एकल/सोलो वादन भी चमत्कारिक व प्रभावोत्पादक होता है।
पखावज/मृदंग की संरचना – पखावज अथवा मृदंग लकड़ी का बना होता है। पखावज लगभग 2 फिट 2 इंच लम्बा होता है, जो खोखला होता है। शीशम, खैर अथवा विजयसाल की लकड़ी के पखावज सर्वोत्तम माने गए हैं। पखावज की संरचना केवल एक इकाई के रूप में होती है जो बेलनाकार आकार वाली होती है। इसके दाहिने मुंह का व्यास लगभग 6–7 इंच होता है जिसमें पूड़ी कसी रहती है। इसे दाहिना कहते हैं। इसका बांया मुंह लगभग 9–10 इंच व्यास का, पूड़ी से ढका रहता है। दाहिने एवम् बांए की पूड़ी बद्दी से कसी रहती है तथा बीच की बाहरी सतह में आठ लकड़ी के 'गट्टे' इसमें फंसे रहते हैं।

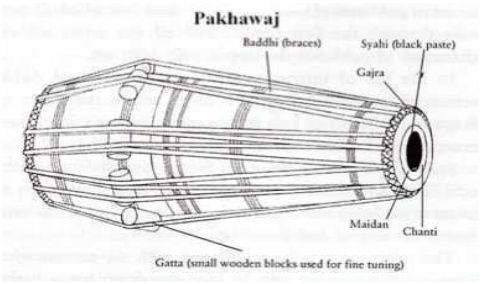

मृदंग/पखावज की दांयी पूड़ी के भाग :–
चांटी – पूड़ी के अंदर की ओर किनारे–किनारे लगी चमड़े की पट्टी को चांटी कहते हैं।
स्याही – पूड़ी के बीचों बीच मसाले(लौह चूर्ण) से निर्मित 'काली चंद्राकार' आकृति स्याही कहलाती है।
लव या लौ – चांटी और स्याही के मध्य के खाली स्थान को लव या मैदान कहते हैं।
गजरा – पूड़ी के चारों ओर चमड़े की मोटी किनार होती है जिसे गजरा कहते हैं।

बांए पूड़ी के भाग :
गोट – पूड़ी में चारों तरफ अन्दर की ओर लगी पट्टी गोट कहलाती है।
गजरा – पूड़ी के चारों तरफ चमड़े की मोटी किनार गजरा कहलाती हैं।
मैदान – बांए पूड़ी के मध्य जहां पर बजाने से पूर्व आटा चिपकाया जाता है तथा गोट के मध्य का खाली स्थान मैदान कहलाता है।

पखावज की बांयी पूड़ी सादी रहती है और वादन के पूर्व जौं या गेहूं का आटा गूंथ कर चंन्द्राकार आकृति में बीच में चिपका दिया जाता है। वादन के उपरान्त खुरच कर निकाल लिया जाता है।

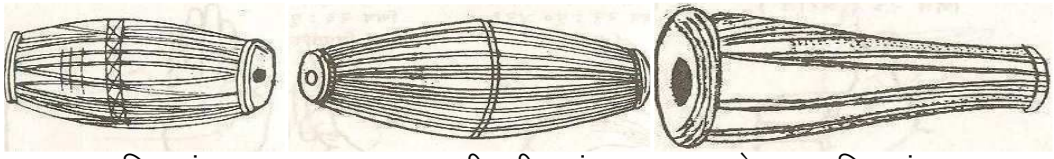

यवाकृति मृदंग हारीतकी मृदंग गोपुच्छाकृति मृदंग

पखावज/मृदंग मिलाने की विधि – पखावज को सामान्यतः षडज(सा) या प स्वर में मिलाते हैं। जिन रागों में प स्वर वर्जित होता है उनकी संगत के लिए इसे सा अथवा म में मिलाया जाता है। गट्टों को हथौड़ी के आघात से बीच में व्यवस्थित कर चढ़ाया जाता है तथा उतारने के लिए गट्टों को बांयी पूड़ी की ओर खिसकाया जाता है। ध्वनि के सूक्ष्म अन्तर हेतु गजरे पर हथौड़ी से प्रहार कर पखावज को मिलाया जाता है।

बांए को मिलाने हेतु गुंथे हुए आटे को कम या अधिक मात्रा में बांयी पूड़ी में चिपका कर दांयी पूड़ी के स्वर के अनुकूल बनाया जाता है। उतारने के लिए अधिक तथा चढ़ाने के लिए कम आटे का प्रयोग होता है।

पखावज को बैठ कर(पालथी लगाकर) बजाया जाता है तथा दाहिना मुंह थोड़ा उठा कर रखा जाता है।

अभ्यास प्रश्न

अ) सत्य/असत्य लिखें :
1. तबला एकांगी ताल वाद्य है।
2. ध्रुवपद/घमार गायकी में पखावज की संगति होती है।
3. पखावज के दाहिने भाग पर आटा गूंथ कर लगाया जाता है।
4. तबला जोडी के बांए भाग को डग्गा भी कहते हैं।

ब) लघु उत्तरीय प्रश्न :
1. तबले की संरचना का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
2. पखावज का परिचय दीजिए।

3.6 प्रमुख स्वर वाद्यों तथा ताल वाद्यों का संक्षिप्त इतिहास, कलाकार व उनके चित्र

भारतीय संगीत में वाद्य संगीत की भी अपनी विशिष्ट एवं समृद्धशाली परम्परा है। प्राचीन काल में संगीतज्ञ गायन के साथ–साथ वीणा वादक के रूप में भी प्रतिष्ठित थे, जो बीते जमाने में

बीनकार के रूप में जाने जाते रहे तथा विख्यात हुए। इन वाद्यों में से कुछ प्रमुख वाद्य यंत्रों का इतिहास, उनके कलाकारों का विवरण तथा चित्र आपके ज्ञान की वृद्धि हेतु प्रस्तुत किए जा रहे हैं। स्वर वाद्यों के साथ ही ताल वाद्यों के इतिहास, कलाकारों का विवरण व चित्रों का भी अवलोकन आप सरलतापूर्वक कर सकेंगे।

3.6.1 स्वर वाद्य सितार का संक्षिप्त इतिहास, कलाकार व उनके चित्र – सितार भारतीय संगीत का अत्यंत लोकप्रिय एवं सुरीला वाद्य यंत्र है। सितार की उत्पत्ति के विषय में भिन्न–भिन्न मत हैं। एक मतानुसार सप्ततंत्री वीणा का यह वर्तमान स्वरूप है। दूसरे मतानुसार अमीर खुसरो को सितार का आविष्कारक माना गया है। फारसी में सेह–तार अर्थात तीन तार वाला वाद्य कलान्तर में सितार के नाम से जाना जाने लगा। एक अन्य मतानुसार इसे ईरानी साज माना जाता है। भारतीय संगीत में मुगलों के शासन काल में इस्लामी संस्कृति का भी प्रभाव पड़ा किन्तु सितार का स्वरूप, भारतीय वाद्यों की विशेषता के फलस्वरूप एक भारतीय वाद्य के रूप में ही प्रतिष्ठित है। भारतीय वाद्यों में घुड़च का चपटा होना तथा जो हड्डी अथवा हाथी दांत से बनाया जाता है एक विशेषता होती है, जो सितार में परिलक्षित है। इसके अतिरिक्त परदों एवं चिकारी की व्यवस्था सितार को भारतीय वाद्य के रूप में स्थापित करती है। तेरहवीं शताब्दी से सितार के प्रचलन की मान्यता है। सोलह–सत्रह परदों का सितार चलथाट का सितार कहलाता था जिसमें विकृत स्वरों की प्राप्ति के लिए परदों को सरकाना पड़ता था। सितार के स्वरूप में संशोधन एवं विकास का क्रम चलता रहा। तीन तारों से बढ़कर सात मुख्य तारों के रूप में इसमें परिवर्तन हुआ। बाईस परदों वाले सितार का प्रचलन भी आरम्भ हुआ जिसे अचल–थाट का सितार कहा जाता है। बीसवीं शताब्दी तक सितार पर्याप्त रूप से विकसित व लोकप्रिय हो चुका था। अनुगूंज के लिए इसमें तरबों का उपयोग किया जाने लगा तथा सितार की आस तथा तारता के गुण को बढ़ाने के लिए वैज्ञानिक उपाय सिद्धहस्त कारीगरों द्वारा खोजे गए।

पहले सुरबहार वाद्य में आलाप–जोड़ का काम करने के पश्चात सितार में गतें बजाई जाती थी। परन्तु सितार में भारतीय वाद्य संगीत की सभी विशेषताओं का निरूपण हो जाने के कारण इसमें गम्भीर आलाप चारी, जोड़–आलाप, मींड़, गमक, कृन्तन तथा मंद्र व तार स्थानों में भी ध्वनि प्रसार की सहज अभिव्यक्ति संभव होने के कारण यह वाद्य विश्व के संगीताकाश में अत्यंत लोकप्रिय हुआ है।

सितार को अपनी कला व भावाभिव्यक्ति का आधार बना कर इसके कलाकारों ने अत्यंत धैर्य व लगन से संगीत साधना का क्रम जारी रखा। उसी का परिणाम है कि आज सितार तथा भारतीय संगीत को विश्व में उल्लेखनीय स्थान प्राप्त हुआ है। वर्तमान युग के प्रमुख सितार वादकों में भारत रत्न स्व0 पं0 रविशंकर, स्व0 उस्ताद विलायत खां, उस्ताद हलीम जाफर खां, स्व0 पं0 निखिल बनर्जी, पं0 देवव्रत चौधरी, उस्ताद शुजात खां, उस्ताद शाहिद परवेज तथा पं0 बुद्धादित्य मुखर्जी का सितार वादन के क्षेत्र में बहुमूल्य योगदान है।

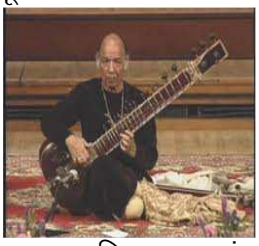

पं0 रविशंकर उस्ताद विलायत खां पं0 निखिल बनर्जी

उस्ताद शाहिद परवेज उस्ताद शुजात खां

3.6.2 स्वर वाद्य बेला/वायलिन का संक्षिप्त इतिहास, कलाकार व उनके चित्र – विश्व में वायलिन/बेला ही एकमात्र ऐसा अद्भुत वाद्य यंत्र है जो प्रायः हर देश में लोकप्रिय है। पाश्चात्य देशों में इस वाद्य यन्त्र के विकास हेतु गहन अनुसन्धान हुए जिसका परिणाम है कि वायलिन यूरोप, अमरीका, चीन, जापान, रूस, मध्य एशिया सहित भारत में भी लोकप्रिय हो गया। वायलिन वाद्य को भारतीय संगीतज्ञों ने जिस प्रकार हाथों हाथ लिया उसका कारण यह है कि यह भारतीय संगीत की कर्नाटकी एवं हिन्दुस्तानी दोनों शैलियों के समस्त अंग–प्रत्यंगों को भली–भांति अभिव्यक्त करने में सक्षम है।

वायलिन अथवा बेला की उत्पत्ति पर विचार करने पर भारतीय संगीतज्ञ यह निष्कर्ष निकालते हैं कि वायलिन भारतीय प्राचीन वाद्य, पिनाकी एवम् कच्छपी वीणा के सम्मिश्रण से विकसित वीणा का वर्तमान स्वरूप है। यह प्रमाणित है कि भारत में 'वीणा' के अनेक प्रकार प्राचीन काल से ही प्रचलित थे। वायलिन के आकार को देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि यह कच्छप अथवा कछुआ की ही आकृति का वाद्य है। इसके अतिरिक्त धनुष अथवा गज से बजने वाले वाद्य यंत्रों का प्रचलन भारत में वैदिक काल से था। भारत के पश्चात गज वाद्यों का प्रयोग अफगान व अरब–तुर्क देशों द्वारा अपनाया गया। इसके पश्चात पाश्चात्य देशों में लगभग बारहवीं शताब्दी में इसका प्रयोग आरम्भ हुआ। इस प्रकार यात्रा करते करते इस वाद्य का अपना वर्तमान स्वरूप पाश्चात्य देशों में इसके विकास के उपरान्त प्राप्त हुआ। इसमें कोई संदेह नहीं है कि वायलिन का मूल आधार भारतीय होने के पश्चात भी अपने वर्तमान स्वरूप में इसको विकसित एवं लोकप्रिय करने में पाश्चात्य संगीतज्ञों एवम् कारीगरों का मुख्य योगदान है। इटली के 'गैसपारो वर्त्तोलेत्ती' (1540–1667) तथा एन्ड्रिया एमटि (1537–1611) यूरोप में वायलिन के श्रेष्ठतम घराने हैं। जर्मनी, फ्रान्स तथा यू.के. में भी वायलिन निर्माण व वादन की परम्पराएं हैं, परन्तु इटली के घराने सर्वश्रेष्ठ माने गए हैं। यूरोप में निकालो पाग्नीनी ने अठारवीं शताब्दी में सफल सोलो वायलिन वादन आरम्भ किया। इस प्रकार वायलिन यूरोप में संगति वाद्य के रूप में, आर्केस्ट्रा के प्रमुख वाद्य के रूप में तथा सोलो प्रस्तुति में सफलतापूर्वक प्रयोग में आ रहा है। इतने वर्षों में यह वाद्य पूरे विश्व में लोकप्रिय हो गया है। भारत में जब यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियां आई तभी सत्रहवीं, अठारहवीं शताब्दी में इसका प्रयोग दक्षिण भारत से आरम्भ हुआ। कर्नाटकी संगीतज्ञों ने इस वाद्य की विशेषताओं को परख कर इसके उपयोग की भारतीय शैली विकसित की। धीरे–धीरे यह वाद्य उत्तर भारत में भी लोकप्रिय हो गया।

भारत में वायलिन के श्रेष्ठ पुरूष कलाकारों में पं0 पी0ए0एस0 अय्यर, उस्ताद अलाउद्दीन खां, पं0 गोपाल कृष्णन, पं0 टी0एन0 कृष्णन, पं0 लालगुडी जयरामन, पं0 गजानन राव जोशी, पं0 वी0जी0 जोग, पं0 डी0के0 दातार तथा डा0 एल0 सुब्रह्मण्यम आदि तथा महिला वायलिन वादिकाओं में डा0 एन0 राजम, सुश्री शिशिर कर्णधार चौधरी, श्रीमती स्वागता घोष, श्रीमती संगीता राजम, श्रीमती कला रामनाथ आदि प्रमुख हैं।

डा0 एन0 राजम

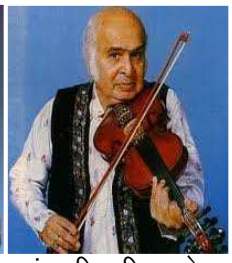
पं0 वी0जी0 जोग

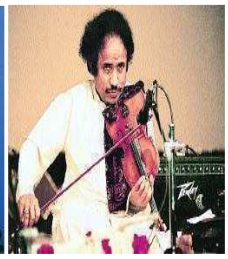
डा0 एल0सुब्रह्मण्यम

पं0 गोपाल कृष्णन

पं0 लालगुडी जयरामन

3.6.3 स्वर वाद्य सारंगी का संक्षिप्त इतिहास, कलाकार व उनके चित्र – स्वर वाद्य सारंगी भारत का एक कर्णप्रिय वाद्य यंत्र है जो भारत में लोक वाद्य व शास्त्रीय वाद्य के रूप में प्रतिष्ठित है। यह वाद्य यंत्र राजस्थान, पंजाब व उत्तराखण्ड के लोक कलाकारों, जोगी, फकीरों आदि का प्रिय वाद्य रहा है। लोक गायन, शास्त्रीय गायन के अतिरिक्त ठुमरी व गजल गायकी के कलाकार सारंगी की संगति में अपनी प्रस्तुति से नए आयाम छूने में सफल होते हैं। तबला व पखावज के कलाकार अपने हुनर को सारंगी से निकले लहरे या नगमे की धुन से जोड़ कर ही अपनी धाक जमाने में सफल होते रहे हैं। कथकनृत्य की आमद व गत–भावों का स्वप्निल कला संसार सारंगी के सुरों की कशिश में ही साकार होता है।

सारंगी के प्रादुर्भाव के विषय में कुछ संगीतज्ञ तेरहवीं शताब्दी के प्रसिद्ध ग्रंथ 'संगीत रत्नाकर' में शारंगदेव द्वारा वर्णित 'सारंगयालापिनी' को सारंगी वाद्य के संदर्भ से जोड़ते हैं। 'रावणहस्तवीणा' का नवीन संस्करण 'सारंगी' को माना जाता है। जैसा कि हम जानते है भारत में तंत्री वाद्यों को 'वीणा' के विभिन्न प्राचीन रूपों से ही जोड़ा जाता है। 'आइने अकबरी' में अबुलफजल ने 'सारंगी' का उल्लेख किया है कि सारंगी आकार में रबाब से छोटी है और इसे 'धिच्च्क' की तरह बजाते हैं। 'धिच्च्क' पर्शियन रबाब की तरह का वाद्य है जिसे गज या धनुष से बजाया जाता है। लंदन में अल्बर्ट म्यूजियम में मुगल कालीन पेंटिंग में सारंगी बजाते एक फकीर का चित्र है। प्रसिद्ध संगीत प्रेमी बादशाह मुहम्मद शाह 'रंगीले' के समय की पुस्तक 'मुरक्क–ए–देहली' में प्रसिद्ध सारंगी–वादक गुलाम मुहम्मद का जिक्र है। 'सारंगी' को पूर्व में 'सौरंगी' भी कहा जाता था क्योंकि संगीत के सौ रंग दिखाने में सारंगी सक्षम मानी जाती थी।

'सारंगी' दरबारों में गायक, वादकों तथा नर्तकों के प्रिय वाद्य के रूप में प्रतिष्ठित रहा। दरबारों के अवसान के पश्चात देशी रियासतों में इसको संरक्षण मिलता रहा। परन्तु कुछ काल तक यह वेश्याओं व मुजरे की संगति में प्रयोग में रहने के कारण इस वाद्य यंत्र की प्रतिष्ठा धूमिल हुई। कालान्तर में यह वाद्य अपनी खूबी व रंगत के कारण पुनः संगीतज्ञों के मध्य लोकप्रिय हो गया तथा समाज में प्रतिष्ठित स्थान पाने में समर्थ हुआ। हमारे देश के प्रसिद्ध गायक उस्ताद अब्दुल करीम खां तथा उस्ताद बड़े गुलाम अली ने अपनी संगीत यात्रा सारंगी वादक के रूप में आरम्भ की। आज यद्यपि सारंगी के कलाकार काफी कम हैं परन्तु जो कलाकार इस वाद्य यंत्र को सहेजे हुए हैं उनका सम्मान राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय मंचों में हो रहा है।

सारंगी के प्रमुख कलाकारों में उ0 अली बख्श, उ0 साबिर अली, उ0 बुन्दु खां, उ0 हुसैन बख्श, उ0 गुलाम साबिर, उ0 सुल्तान खां, पं0 रामनारायण, पं0 गोपाल मिश्र तथा पं0 हनुमान प्रसाद मिश्र प्रमुख नाम हैं। कुछ युवा सारंगी वादक इस दुर्लभ वाद्य को नयी ऊंचाई देने हेतु साधनारत हैं।

उ0 साबिर अली

उ0 सुल्तान खां

उ0 बुन्दु खां

3.6.4 स्वर वाद्य तानपुरा का संक्षिप्त इतिहास, कलाकार व उनके चित्र – स्वरवाद्य तम्बूरा या तानपुरा भारतीय संगीत का अत्यंत महत्वपूर्ण संगत वाद्य यंत्र है। इस वाद्य यंत्र के अभाव में भारतीय कंठ संगीत (गायन) की कल्पना असंभव है। वैदिक काल में 'वीणा' के अनेक प्रकार अथवा स्वरूपों का विवरण प्राप्त होता है जिनमें समवेत स्वरों के माध्यम से 'वैदिक मंत्रों' (ऋचाओं) का गायन होता था। भारतीय संगीत के तंत्री वाद्यों में 'तूम्बे' का प्रमाण सूत्र काल 200 ई0पू0 में प्राप्त होता है।

तूम्बा गोल लौकी के बड़े आकार को सूखाकर प्राप्त किया जाता है। यह एक प्राकृतिक ध्वनि विस्तारक है जिसका उपयोग भारतीय संगीतज्ञों द्वारा किया जाता है। उत्तर भारत के संगीतज्ञ, प्रकृति प्रदत्त इस तुम्बे का प्रयोग तम्बूरा (तानपुरा) अथवा सितार में इसकी कोमल प्रकृति के बावजूद करते हैं। तूम्बा कहीं भी टकराने पर टूट जाता है। अतः इसका प्रयोग सावधानीपूर्वक करना होता है। दक्षिण भारत में लकड़ी को खोद कर ही तूम्बे का आकार देकर इसका प्रयोग वाद्य यंत्रों में किया जाता है।

कुछ संगीतकार इस वाद्ययंत्र का मूल अरब के वाद्य यंत्र 'तुनबर' तथा ग्रीस के 'किनरह' को बताते हैं। परन्तु यह अवधारणा प्रासंगिक नहीं लगती क्योंकि भारत में वैदिक काल से विभिन्न प्रकार की वीणाओं के प्रयोग के प्रमाण हैं। जिनमें धनुर्वीणा व दण्ड वीणा के स्वरूप संथाल जनजाति के वाद्य यंत्र 'बुआंग' तथा तमिल लोक वाद्य 'बिलाड़ी–वाद्यम' तथा ''बिल्ला–यल'' में खोजे गए हैं।

प्राचीन ग्रंथों में तुम्बरू ऋषि को नारद के समकालीन तथा संगीतज्ञ के रूप में वर्णित किया गया है। कुछ संगीतकारों का मत है कि 'तम्बूरा' 'तुम्बरू वीणा' का ही वर्तमान स्वरूप है। 'अमरकोष', हरिवंश पुराण, बौद्ध एवं जैन ग्रंथों के अध्ययन से यह विदित होता है कि तूम्बी युक्त वीणाओं का प्रयोग सूत्रकाल 200 ई0पू0 के पश्चात भी दूसरी शताब्दी व आगे के काल में प्रचलित रहा। इसे अलाबू वीणा कहा जाता था, जो कालान्तर में तूम्बी वीणा के नाम से जाना जाने लगा।

तम्बूरा अथवा तानपुरा अपने वर्तमान स्वरूप में लगभग सोलहवीं शताब्दी में प्रयोग में लाया जाने लगा। एकल गायन प्रस्तुति के लिए एक उत्कृष्ट वाद्य यंत्र की तीव्र आवश्यकता के रूप में तम्बूरा अथवा तानपुरा की उत्पत्ति तथा विकास हुआ। ध्रुवपद गायन तथा खयाल गायन की भारतीय परम्पराओं के अनुसार इसमें समुचित संशोधन किए जाते रहे।

वर्तमान काल में यद्यपि इलैक्ट्रोनिक तानपुरा प्रचलन में है परन्तु परम्परागत तम्बूरा/तानपुरा का कोई विकल्प नहीं है। भारत के वैज्ञानिक सर सी0वी0 रमन तथा प्रो0 यशपाल भी भारतीय तम्बूरे की ध्वनि विस्तारक क्षमता, घुड़च तथा जवारी की विशिष्टता को भारतीय ऋषियों की समृद्धशाली परम्परा का द्योतक मानते हैं।

तानपुरा छेड़ना यद्यपि अत्यंत सरल सी प्रक्रिया लगती है परन्तु इसको कलात्मक शैली से छेड़ने हेतु अभ्यास की आवश्यकता होती है। हथेली व उंगलियों में लोच होना तथा चारों तारों को छेड़ने में समुचित अंतराल से स्वरमय वातावरण उत्पन्न करने हेतु सत्त अभ्यास की आवश्कता होती है। तानपुरा छेड़ने के दो तरीके प्रचलन में हैं – एक भूमि के समानान्तर तम्बूरा को रख कर, दूसरा भूमि के उर्ध्व दिशा में तानपुरा को गोद में रखकर छेड़ना। इसके लिए आवश्यक है कि तानपुरा जिस स्थिति में मिलाया गया हो उसे उसी स्थिति में छेड़ना चाहिए, जो आप पूर्व के चित्रों को देखकर सीख सकते हैं।

<u>3.6.5 ताल वाद्य तबले का संक्षिप्त इतिहास, कलाकार व उनके चित्र</u> – तबला वाद्य भारतीय संगीत का प्रमुख अवनद्ध वाद्य है। भारतीय संगीत में लय एवं ताल को आधार प्रदान करने में यह वाद्य अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ है। वर्तमान युग में गायन, वादन तथा नृत्य के प्रदर्शन की कल्पना तबला वाद्य के बिना अधूरी व निष्प्राण है।

प्राचीन काल में भारत में दुर्दुर, भेरी, ढ़ोल, नगाड़ा, पखावज व मृदंग प्रमुख ताल वाद्य रहे हैं। तबले के जन्म के विषय में संगीतकारों के विभिन्न मत हैं। एक मतानुसार तबला प्राचीन तालवाद्य दुर्दुर का आधुनिक संस्करण माना गया है। फारसी शब्द 'तब्ल' से तबले की उत्पत्ति का मत कुछ संगीतकार व्यक्त करते हैं। 'तबल' एक प्रकार का नगाड़ा था जिसका उपयोग युद्ध के समय जोश उत्पन्न करने हेतु किया जाता था। प्रसिद्ध संगीतज्ञ अमीर खुसरो खाँ (अमीर खुसरो द्वितीय) को तबला का अविष्कार माना गया, परन्तु कालान्तर में इस अवधारणा को संगीतकारों द्वारा नकार दिया गया। सुल्तान गयासुद्दीन बलबन के शासन काल में तबला वाद्य के समान तालवाद्य के चित्र, जो संगीत दरबार में कलाकारों द्वारा प्रयोग में लाए गए, चित्रित किए गए हैं। संगीतकारों का मत है कि तेरहवीं शताब्दी से तबला वाद्य का प्रयोग आरम्भ हुआ जो पहले लोक

वाद्य के रूप में प्रचलन में था। संगीतज्ञ खुसरो खाँ तथा सिद्धार खाँ द्वारा तबले को परिष्कृत कर वर्तमान स्वरूप प्रदान किया गया। अठारहवीं शताब्दी तक यह वाद्य लोकप्रिय हो गया।

तबले के प्रमुख घराने निम्न है :–

दिल्ली घराना – दिल्ली घराना उ0 सिद्धार खाँ द्वारा स्थापित किया गया था। इस घराने में उ0 हबीबुद्दीन खाँ, उ0 मुनीर खाँ, उ0 अहमदजान थिरकवा व पं0 निखिल घोष प्रमुख कलाकार हुए हैं। वर्तमान में उ0 शफात अहमद व उ0 फैयाज खां इस घराने के प्रमुख कलाकार हैं।

अजराड़ा घराना : मेरठ के समीप अजराड़ा घराने की नींव उ0 मीरु खाँ तथा उ0 कल्लू खाँ द्वारा रखी गई। उस्ताद हबीबुद्दीन खाँ इस घराने के प्रमुख तबला वादक हुए हैं। वर्तमान में प्रो0 सुधीर सक्सेना व उ0 रमजान खाँ इस घराने के प्रमुख कलाकार हैं।

लखनऊ घराना – उस्ताद मोंदू खाँ व बख्शू खाँ इस घराने के संस्थापक माने गए हैं। उ0 आबिद हुसैन, उ0 मुन्ने खाँ, उ0 वाजिद हुसैन, उ0 आफाक हुसैन, पं0 बीरू मिश्र इस घराने के प्रमुख तबला वादक हुए हैं। वर्तमान में उ0 आफाक हुसैन के पुत्र उ0 इलमास हुसैन व पं0 स्वपन चौधरी इस घराने के प्रमुख कलाकार हैं।

फर्रूक्खाबाद घराना – उ0 हाजी विलायत अली खाँ द्वारा इस घराने को स्थापित किया गया। उस्ताद मुनीर खाँ, उ0 मसीत खाँ, उ0 करामतउल्ला खाँ, उ0 थिरकवा इस घराने के प्रमुख तबला वादक हुए हैं। वर्तमान में उ0 साबिर खाँ व पं0 अनिन्दो चटर्जी इस घराने के प्रमुख कलाकार हैं।

बनारस घराना – पंडित राम सहाय द्वारा स्थापित यह घराना उत्तर भारत का अत्यंत प्रसिद्ध घराना है। जिसमें पं0 भैरव सहाय, पं0 अनोखे लाल, पं0 कंठे महाराज, पं0 सामता प्रसाद, पं0 किशन महाराज आदि प्रसिद्ध तबला वादक हुए हैं। वर्तमान में पं0 राम कुमार मिश्र व पं0 कुमार बोस इस घराने के प्रमुख कलाकार हैं।

पंजाब घराना – एक मतानुसार उस्ताद हुसैन बखश को इस घराने का संस्थापक माना जाता है तथा दूसरे मतानुसार लाला भवानीदास को। उ0 कादिर बख्श, उ0 अल्ला रक्खा इस घराने के प्रसिद्ध तबला वादक हुए है। वर्तमान में उ0 जाकिर हुसैन इस घराने के प्रमुख कलाकार हैं।

उ0 शफात अहमद
(दिल्ली घराना)

प्रो0 सुधीर सक्सेना
(अजराडा घराना)

पं0 स्वपन चौधरी
(लखनऊ घराना)

उ0 साबिर खां
(फर्रुखाबाद घराना)

पं0 राम कुमार मिश्र
(बनारस घराना)

उ0 जाकिर हुसैन
(पंजाब घराना)

3.6.6 ताल वाद्य मृदंग/पखावज का संक्षिप्त इतिहास, कलाकार व उनके चित्र – ताल वाद्य मृदंग/पखावज की उत्पत्ति प्राचीन वाद्य त्रिपुष्कर से मानी गयी है। उस काल में मृदंग का निर्माण मिट्टी से होता था। पुराणों में इस वाद्य का वर्णन प्राप्त होता है। विघ्न विनाशक गणपति इस वाद्य के वादक माने गए हैं। प्राचीन वाद्य त्रिपुष्कर का आंकिक माग द्विपार्श्वमुखी था अर्थात इस वाद्य को सामने अथवा अंक (गोद) में लिटाकर बजाते थे। 'आंकिक' से ही मृदंग/पखावज का विकास हुआ। भरत के युग में 'आंकिक' को 'मृदंग' कहा जाने लगा। मध्य युग में मृदंग अथवा पखावज के निर्माण में लकड़ी का उपयोग आरम्भ हुआ। ध्रुवपद–धमार गायकी में मृदंग/पखावज की संगति प्रचलित रही है।

मृदंग के बांए मुख में गेहूँ अथवा जौं के गुंथे आटे का प्रयोग वादन के समय किया जाता है। मृदंग अथवा पखावज के बोल अत्यंत गम्भीर व प्रभावोत्पादक होते हैं। मृदंग/पखावज से ही तबला वाद्य की उत्पत्ति मानी गई है, जो आधुनिक भारतीय संगीत का प्रमुख ताल वाद्य है। मृदंग/पखावज एकांगी वाद्य है जबकि तबला द्विअंगी वाद्य है। परन्तु दोनों वाद्य एक ही गोत्र के माने गए है। मृदंग/पखावज के घराने अधिकांश कलाकारों के नाम से है। जैसे – कुदऊसिंह का घराना, नाना पानसे का घराना। कुदऊसिंह के घराने के पखावजी पं0 अयोध्या प्रसाद जी व पं0 रमाकान्त पाठक हुए हैं। अयोध्या के श्री रामशंकर दास 'पागलदास', पं0 अखिलेश गुन्डेचा तथा श्री छत्रपति सिंह भी पखावज/मृदंग के प्रमुख कलाकार हुए हैं।

पं0 रमाकान्त पाठक

पं0 अखिलेश गुन्डेचा

अभ्यास प्रश्न

अ) एक शब्द में उत्तर दीजिए :

1. भारत रत्न से सम्मानित सितार वादक कौन हैं?
2. वायलिन की प्रमुख महिला कलाकार कौन हैं?
3. प्रसिद्ध वादक उस्ताद जाकिर हुसैन किस घराने के कलाकार हैं?
4. 'पागलदास' जी किस वाद्य से सम्बन्धित हैं?
5. तबले के कितने घराने हैं?
6. सितार को पहले क्या कहा जाता था?
7. प्राचीन वाद्य पिनाकी एवं कच्छपी वीणा के सम्मिश्रण का वर्तमान स्वरुप कौन से वाद्य को माना जाता है?
8. एक मतानुसार तुम्बरु वीणा का वर्तमान स्वरुप कौन सा वाद्य है?

ब) लघु उत्तरीय प्रश्न :

1. सितार के इतिहास को संक्षेप में बताइए।
2. बेला/वायलिन के इतिहास को संक्षेप में बताइए।

3.7 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान चुके होंगे कि भारतीय वाद्यों को कितनी श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है। आप प्रमुख भारतीय स्वर व ताल वाद्यों की संरचना व मिलाने (टयुनिंग) की विधि को भी भली–भांति समझ चुके होंगे। इन भारतीय वाद्यों के संक्षिप्त इतिहास व उनके प्रमुख कलाकारों से भी आप परिचित हो चुके होंगे। इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप भारतीय संगीत की ओर आकृष्ट होंगे तथा प्रमुख कलाकारों के प्रदर्शन को सुनने व देखने हेतु प्रेरित होंगे।

3.8 शब्दावली

1. आंकिक – अंक अथवा गोद में
2. द्विपार्श्वमुखी – दोनो ओर (दांए–बांए) मुख वाला
3. परोधा–पंडित – पुरोहित
4. चल–थाट सितार – जिस सितार में सारिकाओं (परदों) को खिसकाना पड़ता है।

3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

उत्तरमाला 1.3 :

अ)रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

1. तत वाद्य **2.** वित्त वाद्य **3.** चमड़ा **4.** मंजीरा **5.** तंत्री व सुषिर वाद्य

उत्तरमाला 1.4 :

अ)एक शब्द में उत्तर दीजिए :

1. मिजराब **2.** दिर **3.** बेला **4.** घुड़च(ब्रिज)
5. मध्य सा **6.** जी, डी, ए व ई

उत्तरमाला 1.5 :

अ) सत्य/असत्य लिखें :

1. असत्य **2.** सत्य **3.** असत्य **4.** सत्य

उत्तरमाला 1.6 :

अ) एक शब्द में उत्तर दीजिए :

1. पं0 रविशंकर **2.** डॉ0 एन0 राजम **3.** पंजाब घराना **4.** पखावज
5. छः(6) **6.** सेह तार **7.** वायलिन **8.** तम्बुरा

3.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. श्रीवास्तव, प्रो0 गिरीश चन्द्र, *ताल परिचय भाग–1,* संगीत सदन प्रकाशन, साउथ मलाका, इलाहाबाद।
2. देवांगन, श्री तुलसी राम, *बेला वादन शिक्षा,* संगीत प्रेस, 88 साउथ मलाका, इलाहाबाद।
3. श्रीवास्तव, प्रो0 हरीशचन्द्र, *राग परिचय भाग–1,* संगीत सदन प्रकाशन, साउथ मलाका, इलाहाबाद।
4. निगम, श्री वी0एस0, *संगीत कौमुदी भाग–2,* सिटीजन प्रेस, भूसा मंडी–अमीनाबाद, लखनऊ।
5. साभार गूगल।

3.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. वसन्त, *संगीत विशारद,* संगीत कार्यालय, हाथरस (उ0प्र0)।
2. *संगीत* मासिक पत्रिका, संगीत कार्यालय, हाथरस (उ0प्र0)।

3.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारतीय वाद्यों का वर्गीकरण किस प्रकार किया गया है? समझाइए। स्वर वाद्य व ताल वाद्य के प्रमुख कलाकारों के नाम अलग–अलग सूची बना कर लिखिए।

इकाई 4– संगीतज्ञों का जीवन परिचय (पं0 वी0एन0 भातखण्डे, पं0 वी0डी0 पलुस्कर व सदारंग–अदारंग)

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 संगीतज्ञों का जीवन परिचय
4.3.1 पं0 वी0 एन0 भातखण्डे
4.3.2 पं0 वी0 डी0 पलुस्कर
4.3.3 सदारंग–अदारंग
4.4 सारांश
4.5 शब्दावली
4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची
4.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम (बी0ए0एम0आई0–101(N)) के प्रथम सेमेस्टर के प्रथम खण्ड की चतुर्थ इकाई है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के बाद आप बता सकते है कि संगीत किसे कहते हैं? आप भारतीय संगीत के इतिहास, सांगीतिक शब्दों की परिभाषा तथा स्वर वाद्य, ताल वाद्य एवं विभिन्न वाद्यों की संरचना एवं मिलाने की विधि से भी परिचित हो चुके होंगे।

प्रस्तुत इकाई में देश के कुछ प्रतिष्ठित संगीतज्ञों के जीवन से आपको परिचित कराया जाएगा, जिन्होंने संगीत के प्रचार–प्रसार में अपना बहुमूल्य योगदान दिया।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप यह जान पाऐंगे कि इन संगीतज्ञों ने संगीत के क्षेत्र में क्या–क्या शोध किए जिनसे भारतीय संगीत जगत लाभान्वित हुआ?

4.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप :–

- पं0 वी0एन0 भातखण्डे जी, पं0 वी0डी0 पलुस्कर जी व सदारंग–अदारंग जी के व्यक्तित्व के बारे में जान सकेंगे।
- भारतीय संगीत के प्रचार–प्रसार के लिए इनके योगदान के विषय में जान सकेंगे।
- जान सकेंगे कि इन्होंने क्या आविष्कार व रचनाएं की।
- इन महान संगीतज्ञों के जीवन परिचय एवं भारतीय संगीत में योगदान से प्रेरणा ले सकेंगे।

4.3 संगीतज्ञों का जीवन परिचय

संगीतज्ञों का जीवन परिचय, संगीत के विद्यार्थियों के लिए अत्यन्त उपयोगी होता है। उन्हें इससे संगीत साधना के मार्ग में आगे बढ़ने की प्रेरणा मिलती है और उनको आदर्श मानकर उनके पद चिन्हों पर चलने की शक्ति प्राप्त होती है।

2.3.1 पं0 विष्णु नारायण भातखण्डे :–

प्रारम्भिक जीवन – पं0 विष्णु नारायण भातखण्डे का जन्म **10 अगस्त सन् 1860** का बम्बई प्रान्त के बालकेश्वर नामक स्थान में कृष्ण जन्माष्टमी के दिन हुआ था। उन्हें अपने पिता से, जिन्हें संगीत से विशेष प्रेम था, संगीत सीखने की प्रेरणा मिली। अतः आप विद्यालयी शिक्षा के साथ–साथ संगीत शिक्षा भी ग्रहण करते रहे। आपने सितार, गायन और बांसुरी की शिक्षा प्राप्त की और तीनों का अच्छा अभ्यास भी किया। आपने सेठ बल्लभ दास से सितार और गुरूराव बुआ बेलबाथकर, जयपुर के मोहम्मद अली खां, ग्वालियर के पं0 एकनाथ, रामपुर के कस्बे अली खां से गायन सीखा। सन् 1883 में बी0ए0 और 1890 में एल0एलबी0 की परीक्षायें उत्तीर्ण की। कुछ समय तक आपने वकालत भी की, किन्तु संगीत के महान प्रेमी का मन वकालत में नहीं लगा।

कार्य – वकालत छोड़कर आप संगीत सेवा में लग गए। सर्वप्रथम संगीत के शास्त्रीय पक्ष की ओर संगीतज्ञों का ध्यान आकर्षित करने का श्रेय आपको ही है। उनके समय के संगीतज्ञ, संगीत–शास्त्र पर बिल्कुल भी ध्यान नही देते थे। अतः उनके गायन–वादन में बड़ी विषमताएं आ गई थी। अतः आपने देश के विभिन्न भागों का भ्रमण किया और संगीत के प्राचीन ग्रन्थों की खोज की। यात्रा में जहॉ भी आपको संगीत का जो भी विद्वान मिला उनसे आप तुरन्त मिलने गए, उनसे भावों का आदान–प्रदान किया और जो कुछ भी ज्ञान धन देकर, सेवा कर अथवा शिष्य बनकर प्राप्त हो सका, आपने बिना संकोच उनसे वह ज्ञान प्राप्त किया। कहीं–कहीं आपको बहुत दिक्कतें हुयी, किन्तु फिर भी विभिन्न रागों के बहुत से गीत एकत्रित किए और उनकी स्वरलिपि 'भातखण्डे क्रमिक पुस्तक मालिका'–6 भागों में संग्रहित कर संगीत प्रेमियों के लिए संगीत की रचनाओं का अथाह भण्डार सुरक्षित कर दिया। उस समय किसी व्यक्ति को केवल एक गीत सीखने के लिए सालों तक अपने गुरू की सेवा करनी पड़ती थी। अतः ऐसे समय में क्रमिक पुस्तकों से संगीत के विद्यार्थियों को बहुत लाभ पहुॅचा।

क्रियात्मक संगीत को लिपिबद्ध करने के लिए भातखण्डे जी ने एक सरल और नवीन स्वरलिपि की रचना की, जो भातखण्डे स्वरलिपि पद्धति के नाम से प्रसिद्ध है। उत्तरी हिन्दुस्तान में यही पद्धति प्रचलन में है। यह पद्धति अन्य की तुलना में सरल और सुबोध है।

इसके अतिरिक्त राग वर्गीकरण का एक नवीन प्रकार – थाट राग वर्गीकरण को प्रचारित करने का श्रेय भी भातखण्डे जी को ही जाता है। आपने वैज्ञानिक ढ़ंग से समस्त रागों को 10 थाटों में विभाजित किया। उनके समय में राग–रागिनी पद्धति प्रचलित थी। उन्होंने उसकी कमियों को समझा और उसके स्थान पर थाट पद्धति का प्रचार किया तथा काफी स्थान पर बिलावल को शुद्ध थाट माना।

जिस समय भारत में रेडियो का प्रचार नहीं था उस समय भातखण्डे जी ने संगीत के प्रचार हेतु संगीत–सम्मेलनों की कल्पना की और सन् 1916 में बड़ौदा नरेश की सहायता से प्रथम संगीत–सम्मेलन सफलता पूर्वक आयोजित किया। सन् 1925 तक आप पॉच वृहद संगीत सम्मेलन

आयोजित कर चुके थे। आपके प्रयासों से कई संगीत विद्यालयों की स्थापना हुई। जिनमें लखनऊ का *''मैरिस म्यूजिक कालेज* (अब *भातखण्डे संगीत महाविद्यालय*), ग्वालियर का *''माधव संगीत महाविद्यालय''* तथा बड़ौदा का *'म्यूजिक कालेज'* विशेष उल्लेखनीय है।

आपके द्वारा रचित मुख्य पुस्तकों की सूची इस प्रकार है :–

- भातखण्डे क्रमिक पुस्तक मालिक–6 भागों में
- भातखण्डे संगीत शास्त्र–4 भागों में
- अभिनव राग मंजरी, अभिनव ताल मंजरी
- श्रीमल्लक्ष्य संगीत
- स्वरमालिका, गीत मालिका

मृत्यु – इस प्रकार अपने अथक परिश्रम द्वारा संगीत की महान सेवा कर और भारतीय शास्त्रीय संगीत को एक नए प्रकाश से आलोकित कर आप **19 सितम्बर 1936** का परलोक वासी हो गए।

4.3.2 पं0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर :–

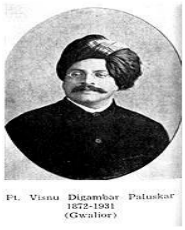

जन्म व शिक्षा – ग्वालियर घराने के प्रसिद्ध संगीतज्ञ पं0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर का जन्म **18 अगस्त सन् 1872**, श्रावण पूर्णिमा को *कुरून्दवाड़* रियासत के बेलगॉव नामक स्थान में हुआ। आपके पिता का नाम दिगम्बर गोपाल और माता का नाम गंगा देवी था। आपके पिता एक अच्छे कीर्तनकार थे। उन्होंने आपको एक अच्छे विद्यालय में भेजना शुरू किया, किन्तु दुर्भाग्यवश दीपावली के दिन आतिशबाजी से आपकी ऑखें खराब हो गई। परिणामस्वरूप अध्ययन बन्द कर देना पड़ा। ऑख के बिना कोई उचित धंधा न मिलने के कारण आपके पिता ने आपको संगीत सिखाना शुरू किया। आपको मिरज के पंडित बालकृष्ण बुआ इचलकरंजीकर के पास संगीत शिक्षा ग्रहण करने के लिए भेज दिया। वहॉ मिरज रियासत के तत्कालीन महाराजा ने आपको आश्रय दिया।

एक हृदय विदारक घटना – एक बार मिरज में एक सार्वजनिक सभा आयोजित हुई और रियासत के प्रतिष्ठित व्यक्तियों को निर्मन्त्रित किया गया। पं0 विष्णु दिगम्बर जी को राजाश्रय् प्राप्त होने के कारण आमंत्रित तो किया गया, परन्तु उनके गुरू को नहीं बुलाया गया। आपने जब उन्हें न बुलाए जाने का कारण जानना चाहा तो पता चला कि उन्हें समाज में प्रतिष्ठित नहीं समझा जाता था क्योंकि वे एक संगीतकार थे। उस काल में संगीतकारों को निम्न श्रेणी का समझा जाता था। समाज में संगीतकारों की यह दयनीय दशा देखकर आप बहुत दुखी हुए। आपने इस स्थिति को सुधारने, समाज में संगीत को उच्च स्थान दिलाने तथा संगीत का प्रचार–प्रसार करने का दृढ़ निश्चय किया।

कार्य – संगीत का प्रचार–प्रसार करने के लिए आपने सर्वप्रथम श्रृंगार रस के शब्दों की जगह भक्ति रस के शब्दों को रखकर संगीत के कुछ विद्यालय स्थापित किए जहॉ लोगों को संगीत की समुचित शिक्षा दी जा सके। आपने **5 मई 1901** को प्रथम संगीत विद्यालय "गंधर्व महाविद्यालय" की स्थापना लाहौर में की। शुरू में कई दिनों तक कोई भी व्यक्ति विद्यालय में प्रवेश के लिए नहीं आया, किन्तु आप निराश नहीं हुए। विद्यालय के समय वे स्वयं तानपुरा लेकर अभ्यास करते रहते थे। कुछ दिनों बाद विद्यार्थियों की संख्या धीरे–धीरे बढती चली गई। सन् 1908 में आपने गन्धर्व महाविद्यालय की एक शाखा बंबई में खोली। वहॉ पर आपको लाहौर की तुलना में अधिक सफलता मिली।

वैदिक काल में प्रचलित आश्रम प्रणाली के आधार पर आपने लगभग सौ शिष्यों को तैयार किया। आपके अधिकांश शिष्य आपके साथ रहते थे। उनके खाने, पीने, रहने तथा शिक्षा का प्रबन्ध आप निःशुल्क करते थे। आपके शिष्यों में *स्व0 वी0एन0 कशालकर, स्व0 पं0 ओंकारनाथ ठाकुर, स्व0 पं0 बी0आर0 देवधर, स्व0 वी0एन0 पटवर्धन* आदि नाम उल्लेखनीय हैं।

उस समय तक गीत को लिखने के लिए कोई स्वरलिपि पद्धति नहीं थी। इसलिए आपने एक स्वरलिपि पद्धति की रचना की जो विष्णु दिगम्बर स्वरलिपि पद्धति के नाम से जानी जाती है।

आपके 12 पुत्र हुए उनमें से 11 पुत्रों की मृत्यु बाल्यावस्था में ही हो गई, केवल एक पुत्र श्री डी0वी0 पलुस्कर अपने समय के अच्छे गायक हुए।

आपके द्वारा रचित पुस्तकें – *संगीत बाल प्रकाश, राग प्रवेश* बीस भाग में, *संगीत तत्व–दर्शक, संगीत शिक्षा, महिला संगीत, भजनामृत लहरी* आदि। जनता में शीघ्र संगीत का प्रचार करने के लिए कुछ समय तक आपने *'संगीतामृत प्रवाह'* नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन भी किया।

मृत्यु – 1930 में आपको लकुवा मार गया, फिर भी अपनी कार्य क्षमता के अनुकूल आप संगीत की सेवा करते रहे। अन्त में **21 अगस्त सन् 1931** को आपने अपने प्राण त्याग दिए।

4.3.3 सदारंग–अदारंग :–

जन्म व शिक्षा – बहादुर शाह प्रथम के पौत्र मुहम्मद शाह रंगीले के काल में संगीत की दो विलक्षण विभूतियों का परिचय प्राप्त होता हैं–नियामत खॉ (सदारंग) व फिरोज़ खॉ (अदारंग)। ख्याल की बहुत सी रचनाओं में 'सदारंगीले मोंमदसा' ऐसा नाम कई बार देखने में आता है। 18 वीं शताब्दी में नियामत खॉ नाम के प्रसिद्ध बीनकार हुए। ये अपनी बनाई हुई रचनाओं में उस समय के बादशाह मुहम्मद शाह का नाम दे दिया करते थे। बादशाह को प्रसन्न करने के लिए ही वे ऐसा किया करते थे। नियामत खॉ अपना उपनाम 'सदारंगीले' रखकर साथ में बादशाह का नाम भी जोड़ दिया करते थे। 'सदारंगीले' को ही 'सदारंग' भी कहा जाता था। नियामत खॉ (सदारंग) के खानदान के बारे में बताया जाता है कि ये तानसेन की पुत्री के खानदान में दसवें व्यक्ति थे। इनके पिता का नाम लाल खॉ सानी और बाबा का नाम खुशाल खॉ था।

कार्य – यद्यपि ख्याल रचना का कार्य सर्वप्रथम अमीर खुसरो ने शुरू किया था। किन्तु उस समय ख्याल रचना विशेष लोकप्रिय नहीं हो सकी। इसके बाद सुल्तान हुसैन शर्की, बाजबहादुर, चंचलसेन, चांद खॉ तथा सूरज खॉ ने भी यह कार्य करने की चेष्टा की, किन्तु उन्हें भी विशेष सफलता नहीं मिल सकी। नियामत खॉ ने उनकी इन असफलताओं का कारण ढूँढ निकाला। इन्होंने अनुभव किया कि जब तक कविताओं में बादशाह का नाम नहीं डाला जाएगा तब तक वे अच्छी तरह प्रचलित नहीं हो सकेंगी। साथ ही उन्हें रूठे हुए बादशाह को भी खुश करना था, क्योंकि वेश्याओं को तालीम न देने पर बादशाह नाराज हो गए थे। अतः वे उपनाम 'सदारंगीले' के साथ बादशाह का नाम तो डालने लगे, किन्तु इसकी खबर बादशाह को नहीं लगने दी कि यह कविताएं किसकी बनाई हुई हैं और सदारंग कौन हैं। इस प्रकार बहुत सी कविताएं नियामत खॉ ने तैयार करके अपने शागिर्दों को भी तैयार करवाई। जब बादशाह को यह कविताएं ख्याल में गाकर सुनाई गई, तो वे बड़े प्रभावित हुए और ये जानने की इच्छा प्रकट की कि यह सदारंगीले कौन है। नियामत खॉ के शागिर्दों ने जवाब दिया कि हमारे उस्ताद जिनका नाम नियामत खॉ है उनका तखल्लुस (उपनाम) सदारंगीले है। बादशाह ने कहा कि अपने उस्ताद को बुला कर लाओ। नियामत खॉ दरबार में उपस्थित हुए तो बादशाह मुहम्मद शाह ने उनके पुराने अपराधों को क्षमा कर दिया और उन्हे पुनः आदरपूर्वक अपने दरबार में रख लिया। आप वीणा बजाकर गायकों की संगत करने के लिए स्थायी रूप से दरबार में रहने लगे। इस प्रकार सदारंग ने पुनः अपना रंग जमाकर आदर प्राप्त कर लिया।

सदारंग के ख्यालों में विशेष रूप से श्रृंगार रस पाया जाता है। कहा जाता है कि सदारंग ने स्वयं अपनी रचनाएं महफिलों में नहीं गाई। उनका कहना था कि खुद अपने लिए या अपने खानदान के लिए उन्होंने ये रचनाएं नहीं बनाई हैं, बल्कि बादशाह सलामत को खुश करने के उद्देश्य से ही इनकी रचना की गई है। इस तरह आपकी रचनाएं समाज में फैल गई और ख्याल गायक व गायिकाओं ने आपकी रचनाएं सुनी और अपनाई।

आपने भारतीय शास्त्रीय संगीत को नए आयाम दिए। आप बीनकार और ख्याल रचयिता के साथ–साथ अच्छे वाग्गेयकार भी थे। आपने गायक की कल्पना के स्रोतों को और आगे की ओर ले जाने में मदद की। जैसे गमक के विचित्र प्रकार के लगाव, मीड़ का वैचित्र, आलापचारी का ढंग तथा उसकी बढ़त के विभिन्न रंग आदि।

सदारंग के साथ–साथ कुछ रचनाओं में अदारंग का नाम भी आता है। इसके बारे में कहा जाता है कि नियामत खॉ के दो पुत्र थे, जिनका नाम फिरोज खॉ और भूपत खॉ था। फिरोज खॉ का ही उपनाम 'अदारंग' है। भूपत खॉ का उपनाम 'महारंग' था। इस प्रकार पिता के साथ–साथ दोनों पुत्र भी संगीत के क्षेत्र में अपना नाम सदा के लिए अमर कर गए।

अभ्यास प्रश्न

(अ) वस्तुनिष्ठ प्रश्न :

1. 'मैरिस म्यूजिक कालेज' की स्थापना किसने की?

क) पं0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर **ख)** पं0 विष्णु नारायण भातखण्डे
ग) सदारंग **घ)** अदारंग

2. नियामत खॉ व फिरोज़ खॉ किस राजा के काल के थे?

क) अकबर **ख)** जहॉगीर
ग) मुहम्मद शाह रंगीले **घ)** बहादुर शाह ज़फर

3. उपनाम 'अदारंग' से किसकी रचनाएं हैं?

क) फिरोज खॉ **ख)** भूपत खॉ
ग) नियामत खॉ **घ)** पं0 वी0एन0 भातखण्डे

4. पं0 ओंकार नाथ ठाकुर किसके शिष्य थे?

क) पं0 वी0एन0 भातखण्डे **ख)** पं0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर
ग) फिरोज खॉ **घ)** भूपत खॉ

(ब) रिक्त स्थानों की पूर्ति :

1. पं0 विष्णु नारायण भातखण्डे जी ने समस्त रागों को ––––– थाट में विभाजित किया।
2. अभिनव राग मंजरी ––––––––––––––––––– ने लिखी है।
3. पं0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर जी के पिता का नाम ––––––––––––––––– था।
4. पं0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर जी ने ––––––––––––– से संगीत की शिक्षा ग्रहण की।
5. अदारंग (फिरोज़ खॉ), सदारंग (नियामत खॉ) जी के ––––––––––––– थे।

(स) लघु उत्तरीय प्रश्न :

1. पं0 भातखण्ड़े जी के कार्यों के बारे में बताइए।
2. सदारंग–अदारंग का भारतीय शास्त्रीय संगीत में क्या योगदान रहा? बताइए।

4.4 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप भारतीय शास्त्रीय संगीत के महान संगीतज्ञों के सांगीतिक जीवन व इससे जुड़े महत्वपूर्ण तथ्यों के बारे में जान चुके होंगे। आप यह जान चुके होंगे कि इन संगीतज्ञों ने किन विषम परिस्थितियों में संगीत का प्रचार–प्रसार किया व किस तरह इसे जन–जन तक पहुॅचाया। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप यह भी जान चुके होंगे कि जो संगीत

शिक्षा केवल गुरू शिष्य परम्परा तक ही सीमित थी तथा हर व्यक्ति के लिए उसे सीख पाना लगभग असम्भव सा था। उस शिक्षा को पं0 भातखण्डे जी और पं0 पलुस्कर जी ने संगीत विद्यालयों की स्थापना कर जन सुलभ बनाया। पं0 भातखण्डे व पं0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर द्वारा निर्मित स्वरलिपि पद्धतियों व रचित पुस्तकों के बारे में भी आप जान चुके होंगे। इसके अतिरिक्त आप यह भी जान चुके होंगे कि सदारंग–अदारंग द्वारा रचित ख्याल क्यों लोकप्रिय हुए?

4.5 शब्दावली

1. क्रियात्मक – व्यवहारिक/प्रयोगात्मक
2. लिपिबद्ध – स्वरलिपि में लिखित
3. अथक – लगातार
4. राजाश्रय – राजकृपा
5. वाग्गेयकार – शास्त्र पक्ष व क्रियात्मक पक्ष दोनों का जानकार
6. मींड़ – अटूट ध्वनि में एक स्वर से दूसरे स्वर में जाना। उदाहरण – सा से प तक मींड लेने में बीच के स्वरों का स्पर्श होता है किन्तु अलग से सुनाई नहीं देता।

4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(अ) वस्तुनिष्ठ प्रश्न :

1. **ख)** पं0 विष्णु नारायण भातखण्डे 2. **ग)** मुहम्मद शाह रंगीले
3. **क)** फिरोज खॉ 4. **ख)** पं0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर

(ब) रिक्त स्थानों की पूर्ति :

1. दस **2.** पं0 वी0एन0 भातखण्डे **3.** दिगम्बर गोपाल
4. पं0 बालकृष्ण बुआ इचलकरंजीकर **5.** पुत्र

4.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. श्रीवास्तव, श्री हरीश चन्द्र, राग परिचय (भाग एक से पॉच), संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद।
2. गोवर्धन, श्रीमती शान्ति, संगीत शास्त्र दर्पण।
3. वसन्त, संगीत विशारद, संगीत कार्यालय, हाथरस।
4. साभार गूगल।

4.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. *संगीत* मासिक पत्रिका, संगीत कार्यालय, हाथरस।
2. चौधरी, डा0 सुभाष रानी, *संगीत के प्रमुख शास्त्रीय सिद्धान्त,* कनिष्का पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
3. बंसल, डॉ0 परमानन्द,*संगीत सागरिका,* प्रासंगिक पब्लिशर्स, नई दिल्ली।

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. पं0 भातखण्डे जी अथवा पं0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर जी का जीवन परिचय व सांगीतिक योगदान के बारे में लिखिए।
2. सदारंग–अदारंग का जीवन परिचय दीजिए।

इकाई 5 – भातखण्डे स्वरलिपि पद्धति का परिचय; राग यमन का परिचय एवं गत(मसीतखानी व रजाखानी तोड़ों सहित) को लिपिबद्ध करना; राग बिलावल का परिचय एवं रजाखानी गत(तोड़ों सहित) को लिपिबद्ध करना

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 भातखण्डे स्वरलिपि पद्धति
5.4 राग यमन का परिचय
  5.4.1 राग यमन में मसीतखानी गत व तोड़ों को लिपिबद्ध करना
  5.4.2 राग यमन में रजाखानी गत व तोड़ों को लिपिबद्ध करना
5.5 राग बिलावल का परिचय
  5.5.1 राग बिलावल में रजाखानी गत को लिपिबद्ध करना
  5.5.2 रजाखानी गत के तोड़ों को लिपिबद्ध करना
5.6 सारांश
5.7 शब्दावली
5.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
5.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
5.11 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम (बी0ए0एम0आई0–101(N)) के प्रथम सेमेस्टर के प्रथम खण्ड की पंचम इकाई है। इससे पहले की इकाइयों के अध्ययन के बाद आप भारतीय संगीत के वाद्य यंत्रों के वर्गीकरण के विषय में तथा देश के प्रख्यात तंत्र वाद्यकारों उस्ताद इनायत खॉ, उस्ताद अली अकबर खॉ व पं0 शिवकुमार शर्मा के जीवन परिचय एवं उनके योगदान के बारे में ज्ञान प्राप्त कर चुके होंगे।

इस इकाई में भातखण्डे स्वरलिपि पद्धति का वर्णन किया गया है। प्रस्तुत इकाई में मसीतखानी गत, रजाखानी गत व तोड़ों को इस पद्धति में लिपिबद्ध करना भी सविस्तार समझाया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप स्वरलिपि पद्धति के महत्व को समझ सकेंगे तथा वर्तमान शिक्षण प्रणाली इसके द्वारा जिस प्रकार सुविधाजनक हो गई है वह भी जान सकेंगे। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप विभिन्न रागों के स्वरूप एवं गतों को स्वरलिपिबद्ध कर लिखित रूप में उसका ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप :

- भारतीय संगीत के स्वरों, वर्णों, अलंकारों तथा राग रचनाओं के विभिन्न स्वरूपों को स्वरलिपि पद्धति में लिख पाऐंगे।
- आवश्यकता होने पर स्वरलिपि को पढ़ व समझ कर पुनः प्रस्तुति करने में सक्षम हो सकेंगे।
- स्वरों के विभिन्न स्वरूपों–शुद्ध, कोमल व तीव्र को सहज रूप में लिख कर प्रदर्शित कर सकेंगे।
- संगीत के विभिन्न सप्तकों को चिन्हित कर सकेंगे।
- संगीत के वर्णों–स्थायी, आरोही, अवरोही व संचारी को स्वरलिपि के माध्यम से भली–भॉति समझ सकेंगे।
- संगीत की राग रचनाओं, गतों के प्रकारों को स्वरलिपि में लिख सकेंगे तथा बार–बार पढ़ कर कंठस्थ कर सकेंगे, जिससे प्रस्तुतीकरण में सहजता प्राप्त होगी।

- स्वरलिपि के साथ ही तालिपि का भी ज्ञान आपको प्राप्त होगा। जिससे राग रचना अथवा गतों को विभिन्न भारतीय तालों में लिख सकेंगे तथा अपने वाद्य में सहजता से लय–ताल में प्रस्तुति देने में सफल हो सकेंगे।

5.3 भातखण्डे स्वरलिपि पद्धति

भातखण्डे स्वरलिपि पद्धति सरल व स्पष्ट होने के कारण भारत में अत्यधिक लोकप्रिय है। इसमें संकेत–चिह्नों की अधिकता नहीं है। आप अल्प समय में ही इसको समझ कर प्रयोग में ला पाऐंगे। इस स्वरलिपि के माध्यम से बंदिश (राग रचना), स्वर के स्वरूपों के साथ ही लय, ताल, मात्रा, काल का निरूपण एक सरल से चार्ट में किया जाता है। जिसका अवलोकन करने से संगीत के विद्यार्थी थोडे अभ्यास से स्वर, लय व ताल में उस राग रचना को प्रस्तुत कर पाने में सक्षम होते हैं। भारतीय संगीत सीखने वाले विदेशी विद्यार्थी भी इसी संगीत लिपि का प्रयोग इसके रोमन संस्करण के माध्यम से करते हैं।

भातखण्डे स्वरलिपि पद्धति में स्वरों के शुद्ध स्वरूपों, मध्यलय अथवा बराबर की लय के लिए किसी चिन्ह का प्रयोग नहीं होता।

- **शुद्ध स्वर** – *सा, रे, ग, म, प, ध, नि*
- **विकृत स्वर** – कोमल स्वर के लिए पडी़ रेखा (–) तथा तीव्र स्वर के लिए खडी़ रेखा (।) का चिह्न रहता है।
- **कोमल स्वर** – *रे, ग, ध, नि*
- **तीव्र स्वर** – *म´*

मध्य सप्तक के लिए कोई चिह्न नहीं होता, जबकि मंद्र सप्तक के लिए स्वरों के नीचे बिन्दु तथा तार सप्तक के लिए स्वरों के उपर बिन्दु लगाया जाता है। इसे आप निम्न प्रकार से समझ पाऐंगे।

मंद्र सप्तक	मध्य सप्तक	तार सप्तक
सा॒ रे॒ ग॒ म॒ प॒ ध॒ नि॒	सा रे ग म प ध नि	सां रें गं मं पं धं निं

इसमें मध्य सप्तक के सा स्वर को आधार मान कर बायीं ओर के स्वर नीचे तथा दायीं ओर के स्वर क्रमशः ऊँचे होते जाऐंगे।

भातखण्डे संगीत लिपि में स्वरों को विभिन्न मात्रा काल में दर्शाने की सरल विधि को आप निम्न प्रकार से समझ लेंगे।

स – – – → (इसमें **सा** स्वर चार मात्रा का है)
स – → (इसमें **सा** स्वर दो मात्रा का है)
स → (इसमें **सा** स्वर एक मात्रा का है)
सरे → (इसमें **सा** आधी मात्रा तथा रे आधी मात्रा का है)
सारेगम → (इसमें चारों स्वर चौथाई मात्रा के हैं)
सारेगमपधनिसां → (इसमें आठों स्वर 1/8 मात्रा के हैं)

भातखण्डे स्वरलिपि में गायन–वादन की मीड़, कण, खटका तथा लयकारी की क्रिया को आप निम्न चिह्नों के माध्यम से समझ सकेंगे।

- **मींड़** – एक स्वर से दूसरे स्वर में ध्वनि– **मगरे** –स्वरों के उपर अर्द्धचंद्र को तोड़े बिना पहुंचना।
- **कण** – मुख्य स्वर में दूसरे स्वर का स्पर्श – **ग्म** – मुख्य स्वर के ऊपर बांयी ओर दूसरे स्वर को लिखना
- **खटका** :–

चार स्वरों को शीघ्र झटके से कहना, इसमें जिस स्वर का खटका हो उससे अगला स्वर फिर मुख्य स्वर फिर पिछला स्वर फिर मुख्य स्वर शीघ्रता से प्रयोग में आता है।

(म) – मुख्य स्वर में खटका के प्रयोग हेतु पहले प, फिर म, फिर ग पुनः म ; म स्वर को ब्रैकट में रखने से यह क्रिया स्पष्ट हो गई।

- **लयकारी** *(दुगुन, तिगुन, चौगुन)* – स्वरों के नीचे अर्द्धचंद्र – **सारे** (दुगुन), **सारेग** (तिगुन), **सारेगम** (चौगुन)

भातखण्डे स्वरलिपि तथा तालिपि का संयोजन – यह संयोजन सरल विधि से होता है। यह आप नीचे दिए गए उदाहरण से समझ पाऐंगे।

उदाहरण 1)

राग	–	***भूपाली***
वर्जित स्वर	–	***म तथा नि***
आरोह	–	***सा रे ग प ध सां***
अवरोह	–	***सां ध प ग रे सा***
पकड़	–	***ग रे सा ध़ सा रे ग, प ग, ध प ग रे सा***
स्थाई	–	गाइये गणपति जग बंदन शंकर सुवन भवानी नंदन
अन्तरा	–	सिद्ध सदन गज–वदन विनायक कृपा सिधु सुंदर लायक

राग भूपाली की इस बंदिश का प्रयोग स्वरवाद्य वायलिन, सारंगी तथा बॉसुरी में भी किया जाता है। मध्य लय की इस बंदिश को तीनताल में स्वर लिपि के साथ इस प्रकार लिखा जाएगाः–

स्थाई

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
								सं	–	ध	प	ग	रे	सा	रे
								गा	ऽ	इ	ये	ग	ण	प	ति
ग	ग	प	–	ग	ग	–	–	ग	–	ग	रे	ग	प	ध	सां
ज	ग	बं	ऽ	द	न	ऽ	ऽ	शं	ऽ	क	र	सु	व	न	भ
ध	सा	सां	–	ध	सां	ध	प								
वा	ऽ	नी	ऽ	नं	ऽ	द	न								
X				2				0				3			

अन्तरा

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
								ग	–	प	ध	सां	सां	सां	सां
								सि	ऽ	द्धि	स	द	न	ग	ज
सां	रें	गं	रे	सां	–	रें	सां								
व	द	न	वि	ना	ऽ	य	क								
								ध	सां	–	ध	–	ध	प	–
								कृ	पा	ऽ	सिं	ऽ	धु	सुं	ऽ
ध	सां	ध	परे	–	सा	सा									
द	र	स	ब	ला	ऽ	य	क								
X				2				0				3			

उपरोक्त सारणी को देखकर आपको यह स्पष्ट हो जायेगा कि बंदिश नौवी मात्रा से गाई जाएगी या बजाई जाएगी। हर विभाग में चार–चार मात्रा है। किसी स्वर को दो मात्रा तक गाने के लिए – (डैश) का प्रयोग किया गया है। मध्य एवं तार सप्तक के स्वरों का प्रयोग किया गया है। बंदिश, स्वरलिपि तथा काललिपि सभी का संयोजन अति सरल वैज्ञानिक विधि से हो गया।

अभ्यास प्रश्न

अ) सत्य / असत्य बताइए :

1. भातखण्डे स्वरलिपि में तार सप्तक के स्वरों के नीचे बिन्दु लगाते हैं।
2. भातखण्डे स्वरलिपि में मीड़ के लिए दो स्वरों के उपर अर्द्धचंद्र बनाते हैं।
3. भातखण्डे स्वरलिपि में तीव्र स्वर के लिए स्वर के नीचे पड़ी रेखा (–) चिह्न का प्रयोग होता है।
4. भातखण्डे स्वरलिपि में मध्य सप्तक के स्वरों के लिए कोई चिह्न नहीं है।

ब) लघु उत्तरीय प्रश्न :

1. भातखण्डे स्वरलिपि पद्धति को संक्षेप में समझाइए।

5.4 राग यमन का परिचय

राग यमन भारतीय संगीत का प्रारम्भिक परन्तु अत्यन्त महत्वपूर्ण राग है। इसको कल्याण तथा ईमन आदि नामों से भी जाना जाता है। इसमें मध्यम स्वर तीव्र (म') तथा अन्य सभी स्वर शुद्ध प्रयोग किए जाते हैं। यह एक **सम्पूर्ण जाति** का राग है क्योंकि इसमें आरोह–अवरोह में सातों स्वरों का प्रयोग होता है। इसका वादी स्वर गन्धार(ग) तथा सम्वादी निषाद(नि) है। यह **पूर्वांगवादी राग** है। **रात्रि के प्रथम प्रहर** में यह राग गाया बजाया जाता है। यह कल्याण थाट से उपजा उसका आश्रय राग भी है। इस राग की अन्य मुख्य विशेषताएं निम्न हैं:–

आरोह – *नि़ रे ग म" प ध नि सां*
अवरोह – *सां नि ध प म" ग रे सा*
पकड़ – *नि़ रे ग रे, सा, प म" ग, रे, सा*
न्यास स्वर – *सा, रे, ग, प तथा नि*

यह गम्भीर प्रकृति का अत्यन्त प्रचलित राग है। गायन में ध्रुपद, बडा ख्याल, छोटा खयाल तथा वादन में मसीतखानी व रजाखानी गतें भी इसमें बजाई जाती है। सितार, सरोद, वायलिन व बॉसुरी वादकों का भी यह प्रिय राग है। भारतीय संगीत में राग यमन की साधना विशेष रूप से की जाती है। इस राग का चलन निम्न प्रकार होता है।

- सा – – – , नि़ रे ग रे़, ग – – –, नि़ रे ग म" प – रें – ग – – –,

  ग – रे –, नि़ ध़ नि़ – रे – , सा – – –

- सा – – – , नि़ ध़ नि़ ध़ प़ – – –, म़" ध़ नि़ ध़ प़ , नि़ ध़ नि़ – रे – , सा – – –

- ग म" ध, नि – – –, म" ध , नि – – – , ध़ – नि – नि, सां – – – नि ध

  नि रें, गं – – – , रें – गं– , रें – नि रें, सां – – –

- सां – – – , नि ध नि ध , प – – – , प म" – रे ग , ग – रे – नि़ ध़ नि़

  रे – – , ग – सा

उपरोक्त स्वर विस्तार से आपको ज्ञात होगा कि इस राग का विस्तार मध्य, मंद्र व तार तीनों सप्तकों में होता है।

5.4.1 राग यमन में मसीतखानी गत व तोडों को लिपिबद्ध करना :

स्थायी (तीनताल)

		गग	रे सासा नि़ रे
		दिर	दा दिर दा रा
ग ग ग रेरे	ग म"म" प म"	ग रे सा रेरे	सा नि़नि़ ध़ प़
दा दा रा दिर	दा दिर दा रा	दा दा रा दिर	दा दिर दा रा
म़" ध़ध़ नि़ सा	रे गग म" रे	ग रे सा	
दा दा रा दिर	दा दिर दा रा	दा दा रा	
X	2	0	3

अन्तरा

		म"म"	ग म"म" ध नि
		दिर	दा दिर दा रा
सां सां सां निनि	ध निनि रें गं	रें नि सां रेंरें	सां निनि ध प
दा दा रा दिर	दा दिर दा रा	दा दा रा दिर	दा दिर दा रा
म" निनि ध प	म" गग म" रे	ग रे सा	
दा दा रा दिर	दा दिर दा रा	दा दा रा	
X	2	0	3

तोडें :

1 – चौथी मात्रा से प्रारम्भ तथा मुखडे पर मिलना :

ग ग रे ग	म"म" म"म" ध ध म" ध	सां सां नि सां	रें गं सां रें	
2				
नि सां ध नि	प ध प म"	ग रे सा–	मुखडा	
0				

2 – सम से सम तक :

नि़ रे ग रे	ग रे नि़ रे	ग म" प म	प म" ग म"	
X				
म" ध नि ध	नि ध म" ध	नि रें गं रें	गं रें सां –	
2				
नि नि ध प	ग रे नि़ रे	ग – <<	नि नि ध प	
0				
ग रे नि़ सा	ग – <<	नि नि ध प	ग रे नि़ रे	ग ग ग
3				X

3 – सम से सम तक :

नि़ रे ग रे	प म" ग रे	ग म" प ध	नि ध प म"	
X				
म" ध नि रें	गं रें गं रें	सां नि ध प	म" ग रे सा	
2				
नि़ रे ग म"	प म" ग रे	ग – <<	नि़ रे ग म"	
0				
प म" ग रे	ग – <<	नि़ रे ग म"	प म" ग रे	ग ग ग
3				X

5.4.2 राग यमन में रजाखानी गत व तोडों को लिपिबद्ध करना :

स्थाई

ग म"म" प रे	– सासा नि़ रे	ग – ग रे	ग म"म" प –
दा दिर दा रा	ऽ दिर दा रा	दा ऽ दा रा	दा दिर दा ऽ
म" धध नि सां	– निनि ध प	ग म"म" पप म"म"	ग– गरे –रे सा–
दा दिर दा रा	ऽ दिर दा रा	दा दिर दिर दिर	दाऽ रदा ऽर दाऽ
0	3	X	2

अन्तरा

म" गग म" प	– निनि ध नि	सां – सां सां	नि रेंरें सां –
दा दिर दा रा	– दिर दा रा	दा – दा रा	दा दिर दा –
नि रेंरें गं सां	– निनि ध प	ग म"म" पप म"म"	ग– गरे –रे सा–
दा दिर दा रा	ऽ दिर दा रा	दा दिर दिर दिर	दाऽ रदा ऽर दाऽ
0	3	X	2

तोड़े :

अ) स्थाई के तोड़े :

1. गरे गम" पध पम" गम" पम" गरे सा–
   X
2. गम" धनि सांनि धप निध पम" गरे सा–
   X
3. पम" गम" पध पम" गम" पम" गरे सा–
   X

ब) अन्तरे के तोड़े :

1. सांनि धप निध पम" गम" पध निरें सां–
   X
2. सांनि़ धनि सारें सांनि धप गम" पध निसां
   X
3. निरें गंरे सांनि धप म"ग म"ध निरें़ सां–
   X

रजाखानी गत के तोड़े सम से सम तक

1. गग रे ग रेसा निसा पप म"प म"ग रेग
X
निनि धनि धप म"प गम" पम" गरे सा–
2
गग रेग रेसा नि़रे ग– << गग रेग
0
रेसा नि़रे ग– << गग रेग नि़ध नि़रे | ग
3 X

2. गरे गरे नि़ध नि़रे पम" पम" गरे गम"
X
निध निध म"ध निसां निध पम गरे सा–
2
गरे गरे नि़ध नि़रे ग– << गरे गरे
0
नि़ध नि़रे ग– << गरे गरे नि़ध नि़रे | ग
3 X

अभ्यास प्रश्न

अ) रिक्त स्थानों की पूर्ति करें :

1. राग यमन का वादी स्वर ———— है।
2. राग यमन का गायन समय ———— है।
3. राग यमन की पकड़ ———— है।
4. राग यमन का थाट ———— है।

ब) लघु उत्तरीय प्रश्न :

1. राग यमन का परिचय दीजिए।

5.5 राग बिलावल का परिचय

राग बिलावल शुद्ध स्वरों का प्रारम्भिक राग है। यह राग बिलावल थाट का आश्रय राग कहलाता है। उत्तरांगवादी स्वरूप का यह राग दिन के प्रथम प्रहर में गाया बजाया जाता है। यह सम्पूर्ण जाति का राग है। प्रचलन में आरोह में मध्यम का प्रयोग कम करते हैं। अवरोह में ग स्वर वक्र रूप से प्रयोग किया जाता है। वादी स्वर धैवत तथा संवादी गंधार है। निम्न विवरण से यह अधिक स्पष्ट हो जाएगा।

आरोह – *सा, रे, ग, म, प, ध, नि, सां*
अवरोह – *सां नि ध, प म ग, रे सा*

दूसरा रूप

आरोह – *सा रे ग रे, ग प, नि ध नि, सां*
अवरोह – *सां नि ध प, म ग म रे, सा*
पकड़ – *ग रे, ग प, नि ध नि सां*

इस राग का मुख्य चलन इस प्रकार है :–

1. सा रे ग रे, ग प ––––, म ग म रे, नि़ ध़ नि़ – नि़ – सा
2. ग रे ग – प –, सा रे ग रे ग – प –, ग रे ग – प –, ध – नि – नि– ध – ध – प, ग – प –, म ग म रे , सा – – रे – सा
3. प ग प ध –, नि – नि–, सां – – –, ग रे ग प – –, ध – नि –, सां – – –, सां रें सां – – –, सां नि ध – घ – प –, ध – ध –, प – – –, ध – प –, म ग म रे, सा – – –

5.5.1 राग बिलावल में रजाखानी गत को लिपिबद्ध करना :

स्थाई(तीनताल)

ग	मम	रे	ग	–	पप	ध	नि	सां	–	सां	रें	सां	निनि	ध	प
ध	निनि	सां	नि	सां	निनि	ध	प	ग	पप	म	ग	म	रेरे	सा	–
0				3				X				2			

अन्तरा

प	गग	प	ध	–	निनि	सां	नि	सां	–	ध	निनि	सां	रें	सां	–
गं	मंमं	रें	सां	–	रें	सां	निनि	ध	प	म	ग	म	रे	सा	–
0				3				X				2			

5.5.2 रजाखानी गत के तोडों को लिपिबद्ध करना :

स्थाई के तोड़े :–

1. गरे गप धनि सांनि धप मग मरे सा–
2. गप धनि सारें सांनि धप मग मरे सा–
3. धनि सारें गरें सांनि सांनि धप मग रेसा

अन्तरे के तोडे :–

1. सांनि धप मग मरे गरे गप धनि सां–
2. सांनि धनि सारें सांनि धप गप धनि सां–
3. सारें गरें गरें सांनि धप गप धनि सां–

सम से सम तक तोड़े :–

1. मग मरे सा–, गरे गप मग मरे सा–
X
गरे गप धनि सांनि धप मग मरे सां–
2
मग मरे गप धनि सां– << मग मरे
0
गप धनि सां– ढ ढ मग मरे गम धनि | सां
3 X
2. गरे गप गप धनि धनि सारें गरें सां–

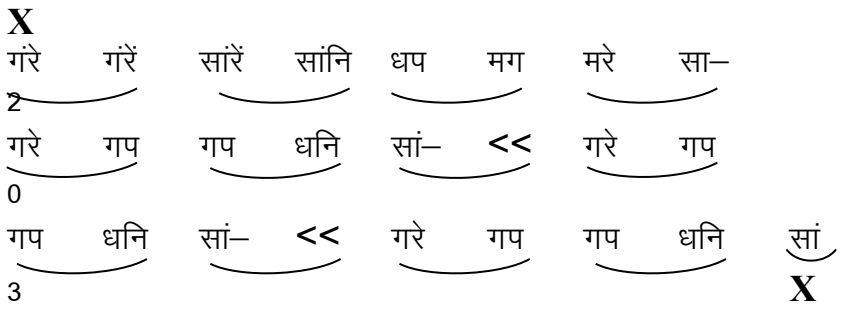

अभ्यास प्रश्न

अ) रिक्त स्थानो की पूर्ति कीजिए :

1. राग बिलावल का वादी स्वर ––––– है।
2. राग बिलावल का गायन/वादन समय ––––– है।
3. बिलावल राग, ––––––– थाट का राग है।
4. राग बिलावल में अवरोह में ––––––स्वर वक्र लगता है।

ब) लघु उत्तरीय प्रश्न :

1. राग बिलावल का परिचय दीजिए।

5.6 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप पं0 विष्णु नारायण भातखण्डे की ''भातखण्डे स्वरलिपि पद्धति'' के माध्यम से भारतीय रागों की रचनाओं(मसीतखानी व रजाखानी गतों) को स्वरलिपि तथा तालिपि के द्वारा पूर्ण रूप से लिपिबद्ध करने तथा भविष्य के लिए सुरक्षित रखने में स्वयं को योग्य पाऐंगे। आप यह भी जान गए होंगे कि बिना सीखे, इस पद्धति में लिपिबद्ध रचनाओं(मसीतखानी व रजाखानी गतों) को किस तरह समझ कर बजाया जा सकता है।

5.7 शब्दावली

1) विकृत स्वर – स्वरों का अपनी स्थिति से नीचा होना कोमल तथा ऊंचा होना तीव्र कहलाता है। इन्हें विकृत स्वर कहा जाता है।

2) सप्तक – सात स्वरों के क्रमानुसार समूह को सप्तक कहते हैं।

3) मींड़ – एक स्वर से किसी अन्य स्वर में ध्वनि को तोडे बिना गाना/बजाना मीड़ कहलाता है। जैसे – म ग रे

4) गत – तंत्री वाद्यों में बजने वाली राग रचनाएं गत कहलाती हैं।

5) कण – किसी स्वर को समीप वाले स्वर से स्पर्श कर गाना अथवा बजाना।

6) लयकारी – गायन/वादन की सामान्य किया को दुगुन, तिगुन व चौगुन में प्रस्तुत करना लयकारी कहलाता है।

7) मसीतखानी गत – वाद्य यंत्रों में बजने वाली विलम्बित गत, जिसे सितार वादक मसीत खॉ द्वारा प्रचलित किया गया, मसीतखानी गत कहलाती है।

8) रजाखानी गत – वाद्य यंत्रों में बजने वाली रागों की मध्य/द्रुत रचनाएं जिन्हें सितार वादक रजाखान द्वारा प्रचलित किया गया, रजाखानी गत कहलाती हैं।

9) उत्तरांगवादी – जिस राग का वादी स्वर, सप्तक के उत्तरी भाग–*म प ध नी सां* में हो, वह उत्तरांगवादी कहलाता है। ऐसे राग मध्य व तार सप्तक में अधिक प्रभावी होते हैं।

5.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5.4 की उत्तरमाला :–

1. गांधार 2. रात्रि का प्रथम प्रहर है। 3. नि़ रे ग रे, सा, प म" ग, रे, सा 4. कल्याण

5.5 की उत्तरमाला :–

1. धैवत 2. दिन का प्रथम प्रहर 3. बिलावल 4. गंधार

5.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. भातखण्डे, पं0 विष्णुनारायण, *हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति–क्रमिक पुस्तक मालिका भाग–2,* संगीत कार्यालय, हाथरस।
2. देवांगन, श्री तुलसी राम, *बेला वादन शिक्षा,* संगीत प्रेस, 88 साउथ मलाका, इलाहाबाद।
3. श्रीवास्तव, प्रो0 हरीश चन्द्र, *राग परिचय भाग – 1,* संगीत सदन प्रकाशन, साउथ मालाका, इलाहाबाद।
4. चौबे, डा0 सुशील कुमार, *हमारा आधुनिक संगीत,* उ0प्र0 हिन्दी संस्थान, लखनऊ।

5.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. वसन्त, *संगीत विशारद,* संगीत कार्यालय, हाथरस (उ0 प्र0)।
2. *संगीत* मासिक पत्रिका, संगीत कार्यालय, हाथरस (उ0 प्र0)।

5.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भातखण्डे स्वरलिपि पद्धति को विस्तार से समझाइए।
2. राग यमन का पूर्ण परिचय आलाप, मसीतखानी गत, रजाखानी गत एवं तोडों के साथ दीजिए।

इकाई 6 – भातखण्डेताललिपि पद्धति का परिचय तथा पाठ्यक्रम की तालों को लयकारी(दुगुन व चौगुन)सहित लिपिबद्ध करना

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 ताललिपि पद्धति
    6.3.1 भातखण्डे ताललिपि पद्धति
    6.3.2 ताल से सम्बन्धित मुख्य पारिभाषिक शब्द
6.4 तालों का परिचय एवं स्वरूप
    6.4.1 तीनताल का सम्पूर्ण परिचय
    6.4.2 चारताल का सम्पूर्ण परिचय
6.5 तालों की लयकारियाँ
    6.5.1 तीनताल की लयकारियाँ
    6.5.2 चारताल की लयकारियाँ
6.6 सारांश
6.7 शब्दावली
6.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
6.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
6.11 निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम (बी0ए0एम0आई0–101(N)) के प्रथम सेमेस्टर के प्रथम खण्ड की षष्टम इकाई है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के पश्चात आप बता सकते हैं कि स्वरलिपि पद्धति द्वारा संगीत जैसे प्रायोगिक विषय को भी लिखित रूप में किस तरह सर्वसुलभ बना दिया गया है।

प्रस्तुत इकाई में भातखण्डे जी द्वारा निर्मित ताललिपि पद्धति का पूर्ण परिचय देते हुए पाठ्यक्रम की तालों को उदाहरण स्वरूप लिपिबद्ध भी किया गया है। साथ ही तालों की लयकारियाँ भी प्रस्तुत की गई हैं।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप ताललिपि पद्धति के महत्व को समझ सकेंगे। हिन्दुस्तानी संगीत से सम्बन्धित तालों के विभिन्न तत्वों को भी जान सकेंगे। गीत रचनाओं में तालों के प्रयोग एवं उन्हें लिपिबद्ध करने की पद्धति को भी आप समझ सकेंगे।

6.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप :–

- बता सकेंगे कि तालिपि पद्धति द्वारा किस प्रकार ताल का क्रियात्मक स्वरुप प्रस्तुत किया जा सकता है।
- ताल सम्बन्धी समस्त तत्वों को समझते हुए उनके प्रयोग सम्बन्धी नियमों को भी जान सकेंगे।
- ताल के लयकारी सम्बन्धी पक्ष को समझते हुए संगीत में इनका प्रयोग कर सकेंगे।

6.3 तालिपि पद्धति

विद्वान संगीतज्ञों का कथन है कि स्वर तथा लय संगीत कला के दो पैर हैं तथा एक के न होने से वह लँगड़ी रहती है। सम्पूर्ण जगत का आधार मात्र 'लय' है। यदि लय का क्रम क्षण मात्र भी अपने स्थान से हट जाए तो प्रलय का रूप धारण करने में तनिक भी देर नहीं लगेगी। प्रत्येक गति में एक लय है। प्रत्येक जीव के उत्पन्न होते ही उसमें एक काल का सम्मिश्रण हो जाता है तथा यही काल अथवा समय जब निरन्तर बराबर चलता है तो उसी को लय कह देते हैं। संगीत में स्वर की उत्पत्ति के साथ उसे बाँधने हेतु काल की उत्पत्ति हो जाती है। लय ही स्वर को अपने बन्धन में बांधकर उसे परिमार्जित कर देती है। लय के द्वारा ही स्वर में बल एवं माधुर्य उत्पन्न हो जाता है। विभिन्न लयों में बंधकर स्वर सौन्दर्य अत्यधिक बढ़ जाता है। लय से ही संगीत में रंजकता आती है। गायन, वादन एवं नृत्य तीनों विधाओं में लय का विशेष महत्व है। बिना लय के संगीत की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। गायक या वादक स्वरों के माध्यम से कभी विलम्बित लय में, कभी मध्य लय में तथा कभी द्रुत लय में अपनी कला का प्रस्तुतिकरण करता है या कह सकते है कि अपने मन के भावों को श्रोताओं तक पहुँचाता है।

लय को ही एक निश्चित चक्र में बाँधने से तालों की उत्पत्ति होती है। वास्तव में अगर केवल लय ही चलती रहेगी तो सम्भवतः उसके चलने से श्रोता ऊब जाएँ, अतः लय को संगीतपयोगी एवं रजंक बनाने के लिए एक निश्चित क्रम में बाँध देते हैं। उसी निश्चित क्रम को ताल की संज्ञा दी जाती है। लय का क्रम आलाप गायन में भी रहता है परन्तु उसमें निश्चित मात्रा क्रम नहीं रहता है। जब प्रारम्भिक आलाप के पश्चात बंदिश या गीत गाते हैं वहीं से लय का क्रम प्रारम्भ होता है तथा साथ में तबले में इस निश्चित क्रम से सम्बन्धित ताल बजायी जाती है। जिस प्रकार बंदिशों को स्वरलिपि पद्धति में लिखित रूप में सुरक्षित रखा जाता है उसी प्रकार तालों को लिखने के लिए तालिपि पद्धति का प्रयोग किया जाता है।

भारतीय संगीत में ताल का स्थान महत्वपूर्ण है। जिस गायक या वादक को ताल का ज्ञान न हो वह गायक–वादक कहलाने योग्य नहीं है। संगीत में जो समय का निर्धारण होता है वहीं नापने का साधन ताल है। लय को नींव प्रदान करने का कार्य ताल का ही है। स्वर को उत्पन्न करना, उसे गति देना, इसके पश्चात उचित समय पर उसमें ठहराव एवं विस्तार करने से ही राग में रंजकता उत्पन्न होती है। परन्तु राग जैसी महान रचना को बन्धन में बाधना एक कठिन कार्य है। इसके लिए लय, मात्रा, काल आदि का प्रयोग होता है तथा इसका आधार ताल ही है। ताल हमारे भारतीय संगीत की अपनी विशेषता है। पाश्चात्य संगीत में केवल लय दिखाई देती है उनके यहाँ भारतीय तालों के समान किसी प्रकार की व्यवस्था नहीं है।

6.3.1 भातखण्डे तालिपि पद्धति – शास्त्रीय संगीत में तालों के लिखने हेतु तालिपि पद्धति का प्रयोग किया जाता है। इसके लिए मुख्य रूप से भातखण्डे तालिपि पद्धति का प्रचलन है। पं0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर पद्धति द्वारा भी तालों को लिपिबद्ध करने का प्रचलन है, परन्तु भातखण्डे पद्धति ही मुख्य रूप से प्रयोग में लायी जाती है। भातखण्डे तालिपि पद्धति सरल एवं सुगम हैं इसीलिए विद्यार्थियों को भी सुविधा रहती है। भातखण्डे तालिपि पद्धति में ताल चिन्हों का प्रयोग निम्न रूप में किया जाता है। उदाहरण के लिए तीनताल के स्वरूप का विवरण प्रस्तुत किया गया है ।

ताली के लिए – ताली के लिए संख्या जैसे 2, 3, 4 आदि दी जाती है जो कि सम को पहली मानकर होती है।
खाली के लिए – 0

1 2 3 4	5 6 7 8	9 10 11 12	13 14 15 16	
धा धिं धिं धा	धा धिं धिं धा	धा तिं तिं ता	ता धिं धिं धा	धा
X	2	0	3	X

• सम – भातखण्डे ताललिपि पद्धति में सम के लिए 'X' का चिन्ह लगाया जाता है। सम का अर्थ होता है ताल का आरम्भ। गायन, वादन, नृत्य में सम का सबसे महत्वपूर्ण स्थान होता है। प्रत्येक ताल की पहली मात्रा को सम कहा जाता है। जैसे तीनताल का सम पहली मात्रा पर ही होगा। संगीत के अन्तर्गत सभी विधाओं में सम पर जोर देकर विशेष रूप से सिर हिलाकर सम के स्थान को दर्शाया जाता है। गायक–वादक अपनी प्रस्तुति देते हुए विभिन्न स्वर, लय की क्रियाएँ करते हुए संगतकार के साथ सम पर आकर मिल जाते हैं। सम पर विशेष रूप से ताली होती है, यही पहली मात्रा भी है। ताल का एक निश्चित क्रम होता है। प्रत्येक बार क्रम पूरा होते ही सम आ जाता है, जैसे 10 मात्रा की ताल है तो पहली मात्रा पर सम के बाद क्रम लगातार चलता रहता है तथा प्रत्येक बार अंत में 10 मात्रा के बाद पहली मात्रा पर सम निरन्तर आते रहता है। संगीत में सम एक ऐसा स्थान होता है जिसका आनन्द संगीतकार व श्रोता दोनों लेते हैं।

• ताली – भातखण्डे ताललिपि पद्धति में ताली के स्थान पर ताली संख्या द्वारा तालों को लिपिबद्ध किया जाता है। जैसा आप जान चुके हैं कि पहली ताली सम पर होती है। इसके बाद जितनी भी ताली आती हैं उन्हें चिन्हित करने के लिए क्रमशः ताली संख्या 2, 3, 4 का प्रयोग किया जाता है। ताल के निश्चित क्रम में प्रत्येक विभाग में जहाँ पर ताली होती है वहाँ उसकी क्रम संख्या लिख देते हैं। तबले पर भी ताली बजाने के स्थान पर धा, धिं बोल बजाए जाते हैं। उदाहरण के लिए आप पहले तीनताल को जान चुके हैं कि उसमें 1, 5 तथा 13 मात्राओं पर ताली है तथा तालियों की क्रम 2, 3 व 4 द्वारा इन स्थानों को चिन्हित किया गया है। इन स्थानों पर ताली बजाई जाती है तथा तबले पर 'धा' का बोल बजता है। प्रत्येक विभाग के प्रारम्भ में ही ताली का स्थान होता है। इसे 'भरी' नाम से भी उच्चारित किया जाता है।

• खाली – भातखण्डे ताललिपि पद्धति में खाली के लिए '0' चिन्ह लगाया जाता है। किसी भी ताल के उस विभाग की पहली मात्रा जहाँ सम, ताली या भरी न हो उसको खाली कहा जाता है। खाली में ताली न लगाकर विशेष रूप से हाथ को उल्टा करके या हवा में इशारे के साथ दर्शाया जाता है। विभिन्न तालों में खाली का स्थान कई जगह हो सकता है। जैसे कि प्रारम्भ में आप तीनताल को जान चुके हैं। इसमें 9वीं मात्रा पर खाली है, वहाँ पर '0' का चिन्ह भी इसीलिए लगाया गया है। अधिकतर यह देखा गया है कि जिन तालों में एक ही खाली स्थान होता है उनमें यह स्थान ज्ञात करने के लिए ताल की कुल मात्राओं का आधा कर उसमें एक जोड़कर जाना जा सकता है, जैसे तीनताल में खाली का स्थान पता लगाना है तो कुल मात्रा 16 की आधा 8 में 1 जोड़कर 8+1=9 खाली का स्थान 9 पर ज्ञात हो जाएगा। खाली का स्थान तालों में विशेष रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि सम जो सबसे सौन्दर्यपूर्ण स्थान है उसका पता हमें खाली के द्वारा ही पता चलता है। सम आने से पहले खाली के द्वारा हमें मात्राओं का पता चलता है, जैसे गायक कौन सी मात्रा पर है तथा सम कितनी मात्रा बाद आ जाएगा इत्यादि। खाली का स्थान, साधारणतः सम अर्थात ताल की पहली मात्रा को छोड़कर अन्य विभागों के प्रारम्भ में होता है। विभिन्न तालों में खाली के स्थान कई हो सकते हैं।

• **विभाग** – भातखण्डे तालिपि पद्धति में विभाग को एक सीधी रेखा 'I' से चिन्हित किया जाता है। सभी तालें विभिन्न विभागों में बँटी रहती हैं। जिस प्रकार सभी तालों की निश्चित मात्राएँ होती हैं उसी प्रकार तालों के निश्चित विभाग भी होते हैं। अधिकतर विभागों की संख्या 2 से लेकर 5 या 6 तक हो सकती है। जितनी बार ताली एवं खाली का स्थान ताल में होगा उतनी बार विभाग को भी स्थान मिलेगा अर्थात ताली–खाली पर विभागों की संख्या निर्भर है। जैसे तीनताल में 1, 5, 13 पर ताली तथा 9 पर खाली है तो इस प्रकार 4 विभाग होंगे। हमारे संगीत में कुछ ऐसी भी तालें हैं जिनमें विभागों की संख्या बहुत अधिक है तथा प्रत्येक मात्रा में एक विभाग होता है। जैसे कुंभ और रूद्र तालें, इन तालों में प्रत्येक मात्रा एक विभाग का स्थान लिए है। विभागों से ताल में एक खाँचा बना रहता है तथा गायक–वादक को ताल का ज्ञान स्पष्ट रूप से हो जाता है।

6.3.2 ताल से सम्बन्धित मुख्य पारिभाषिक शब्दः

• **आवर्तन** – किसी भी ताल का अपना एक निश्चित क्रम होता है। ताल जितनी मात्रा की होती है उतनी मात्रा पूर्ण होने के बाद पुनः उसी क्रम में चलती रहती है। इसे ताल का एक चक्र कहा जाता है तथा इसी चक्र का नाम आवर्तन है। इसी प्रकार गीत रचना के एक पूरे चक्र को आवर्तन कहते हैं। अर्थात पहली मात्रा से वापस पूरे चक्र के पश्चात जब पुनः पहली मात्रा पर जाते हैं तब उसे एक आवर्तन कहते हैं। आवर्तन एवं सम में यह अन्तर है कि सम पहली मात्रा में होता है तथा सम से पुनः सम तक आने को आवर्तन कहा जाता है।

• **मात्रा** – संगीत में समय नापने के लिए जिस इकाई का प्रयोग किया जाता है उसे मात्रा कहते हैं। मात्राओं के आधार पर तालों की रचना होती है। प्रत्येक ताल अपनी निश्चित मात्रा एवं बोलों के आधार पर पहचानी जाती है। जैसे– तीनताल में 16 मात्राएँ व एकताल में 12 मात्राएँ होती हैं। मात्राओं के आधार पर विभिन्न लयकारियाँ की जाती हैं। गीत रचनाओं में विशेष रूप से मात्राओं के आधार पर पता चलता है कि कौन सी रचना किस मात्रा से प्रारम्भ है तथा किस मात्रा में सम तथा खाली है। बंदिशों का आरम्भ भी अलग–अलग मात्राओं से होता है।

गीत रचनाओं एवं बंदिश के विषय में आप जान चुके हैं कि राग की वह शब्द रचना जो विभिन्न तालों में निबद्ध होती है, बंदिश कहलाती है। ताल पक्ष से सम्बन्धित वाद्यों पर बजने वाली बदिंशों के विषय में भी यहाँ बताना आवश्यक है। वाद्यों पर बजने वाली स्वर एवं तालबद्ध रचनाओं को 'गत' कहा जाता है। गत कई प्रकार की होती हैं। गतें विलम्बित एवं मध्य लय में बजायी जाती हैं। इनमें लयकारियाँ भी की जाती है। एक गत में पाँच मात्रा के मुखड़े लेने का भी चलन है। यह गतों की ताल पक्ष सम्बन्धी कुछ जानकारी थी।

• **ठेका** – यह शब्द ताल वाद्यों का सबसे मौलिक तथा महत्वपूर्ण शब्द है। ठेका, वर्णों या बोलों की वह बंदिश है जो विशिष्ट संख्या, बोल तथा विभाग वाली मात्राओं में निबद्ध होती है। मात्राओं की संख्या, बोलों एवं विभागों के अनुसार प्रत्येक ताल का स्वरूप भिन्न होता है। उदाहरण के लिए चारताल एवं एकताल की मात्राएँ एवं विभाग एक से हैं परन्तु बोलों की दृष्टि से इनमें भिन्नता है। आप पहले जान चुके हैं कि बोलों, मात्राओं, विभागों आदि के आधार पर प्रत्येक ताल भिन्न–भिन्न होती है। साथ ही एक भिन्नता और भी है जो जानना आवश्यक है। कुछ तालों के बोलों में खुलापन होता है जिन्हें खुले एवं दमदार बोलों की तालों के अन्तर्गत रखा जाता है। इस प्रकार की तालों को पखावज पर बजाया जाता है, जैसे – चारताल, सूलताल आदि। अन्य तालें तबले पर बजाई जाती है। पखावज एवं मृदंग पर बजने वाली तालें *'थपिया बाज'* के नाम से जानी जाती है। 'थपिया बाज' का अर्थ ही खुले बोल का बाज है। ठेका चक्राकार घूमता रहता है। ठेके सम्बन्धी अन्य तत्व जैसे सम, ताली खाली आदि के विषय में आप पहले ही जान चुके है। ठेका 'सम' की धुरी पर घूमता रहता है। इस प्रकार सम्पूर्ण ताल के स्वरूप को सांगीतिक भाषा में ठेका कहा जाता है।

• **बोल** – तबले, पखावज एवं ताल वाद्यों में जो वर्ण या अक्षर बजाए जाते हैं उन्हें ही बोल कहा जाता है। बोलों से तालों का स्वरूप स्पष्ट रूप से पता चलता है। हमारे पुराने विद्वान तबला वादकों द्वारा ही प्रत्येक ताल के बोलों का निर्माण किया गया है। अनेक तालों के बोलों में कुछ विभिन्नताएँ भी नजर आती हैं परन्तु प्रचलित सभी तालों का स्वरूप लगभग सभी जगह एक सा है। बोलों में थोड़ा बहुत अन्तर होने के बाद भी सभी तालों का स्वरूप एक जैसा है। तीनताल के बोल उदाहरण के लिए आप जान चुके हैं। तीनताल में जो धा धिं धि धा ..... आदि वर्ण या शब्द हैं, इन्हीं को बोल कहा जाता है।

अभ्यास प्रश्न

1) लघु उत्तरीय प्रश्न :

(i) तालिपि पद्धति में सम का महत्व बताइए।

(ii) खाली के विषय में आप क्या जानते हैं? बताइए।

2) एक शब्द में उत्तर दीजिए :

(i) खाली के लिए कौन सा चिन्ह प्रयोग होता है?

(ii) ताल की पहली मात्रा पर क्या होता है?

(iii)धमार गायन में किस ताल का प्रयोग होता है?

3) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

(क) लय को निश्चित मात्राओं में बाँधने पर .....की उत्पत्ति होती है।

(ख) ध्रुपद गायन में ..... ताल का प्रयोग होता है।

(ग) पखावज में बजने वाली तालें ..... नाम से जानी जाती हैं।

6.4 तालों का परिचय एवं स्वरूप

भारतीय शास्त्रीय संगीत में प्रमुख रुप से तालों में तीनताल, एकताल, चारताल, झपताल, धमारताल, तिलवाड़ा ताल एवं रूपक ताल का प्रयोग होता है। तीनताल एवं एकताल ख्याल गायन में सबसे प्रमुख तथा चारताल ध्रुपद गायन की सबसे प्रमुख ताल है। आप ताल सम्बन्धी सम्पूर्ण तत्वों का अध्ययन कर चुके हैं। अब आप पाठ्यक्रम से सम्बन्धित कुछ तालों की विस्तृत जानकारी प्राप्त करेंगे।

6.4.1 तीनताल का सम्पूर्ण परिचय :

मात्रा – *16*, **विभाग** – *4*, **ताली** – *1, 5 व 13* पर तथा **खाली** – *9* पर

ठेका

धा धिं धिं धा	धा धिं धिं धा	धा तिं तिं ता	ता धिं धिं धा	धा
X	2	0	3	X

परिचय – तीनताल में 16 मात्राएँ होती हैं। यह 16 मात्राएँ 4 विभागों में बटी रहती हैं। चारों विभाग 4–4 मात्राओं के होते हैं। जैसा कि आप सम की परिभाषा जान चुके हैं कि सम हमेशा प्रथम मात्रा पर होता है। तीनताल में सम 'धा' पर है। खाली का स्थान ताल में बीचों–बीच 9वीं मात्रा पर है।

हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के अन्तर्गत 'तीनताल' बहुत महत्वपूर्ण ताल है। रागों में द्रुत ख्यालों में अधिकतर इसी ताल का प्रयोग होता है। अनेक विलम्बित ख्याल भी तीनताल में गाए जाते हैं। ताल में सम का स्थान प्रथम मात्रा में होता है परन्तु अधिकतर ख्याल गायन की बंदिशों का प्रारम्भ खाली से होता है इसलिए आवश्यक नहीं है कि बंदिश की पहली मात्रा पर भी सम ही

होगा। कई विद्वान इस ताल के बोलों में 'धा' के स्थान पर 'ना' शब्द का प्रयोग भी करते हैं। जैसे – ना धिं धिं ना, ना धिं धिं ना। तबला वादन में भी यह ताल सबसे प्रमुख रूप से बजायी जाती है। अति द्रुत गति के तराना गायन में भी तीनताल विशेष रूप से प्रचलित है।

6.4.2 चारताल का सम्पूर्ण परिचय :

मात्रा – 12, **विभाग** – 6, **ताली** – 1, 5, 9 व 11 पर तथा **खाली** – 3 व 7 पर

ठेका

धा	धा	दिं	ता	किट	धा	दिं	ता	तिट	कत	गदि	गन	धा
X		0		2		0		3		4		X

परिचय – चारताल में 12 मात्राएँ होती हैं। मात्राएँ 6 विभागों में बटी रहती हैं। प्रत्येक विभाग 2–2 मात्राओं का होता है। सम प्रथम मात्रा में 'धा' पर है। इस ताल में खाली के स्थान 2 हैं तथा ताली के स्थान 4 हैं। चारताल में विभाग एवं मात्राओं की संख्या एकताल के जैसी है परन्तु बोल अथवा वर्ण असमान हैं।

हिन्दुस्तानी संगीत के अन्तर्गत गायन में जिस प्रकार तीनताल एवं एकताल का बहुत प्रयोग होता है उसी प्रकार ध्रुपद गायन में चारताल का प्रयोग सबसे अधिक होता है। वास्तव में चारताल 'ध्रुपद' गायन में बजने वाली सबसे प्रमुख ताल है। पहले भी आप जान चुके हैं कि चारताल 'खुले बोल' की ताल है। इसे 'थपिया बाज' की ताल भी कहते हैं क्योंकि इस ताल में थाप का प्रयोग विशेष रूप से होता है। यह पखावज पर बजने वाली ताल है। कुछ तबला वादक तबले पर भी इस ताल को बजा लेते हैं परन्तु ध्रुपद गायन में यह ताल 'पखावज' पर ही बजायी जाती है। यह ताल गम्भीर प्रकृति की है अतः यह ध्रुपद गायन के लिए उपयुक्त मानी जाती है। चारताल के अतिरिक्त सूलताल एवं तीव्राताल भी ध्रुपद गायन के प्रयोग में आती है। ध्रुपद गायन में विषेष रूप से इस ताल को मध्यलय से लेकर द्रुत गति में विभिन्न लयकारियाँ दिखाने के लिए प्रयोग किया जाता है।

अभ्यास प्रश्न

1) लघु उत्तरीय प्रश्न :

(i) तीनताल का परिचय दीजिए।

(ii) चारताल का स्वरूप बताइए।

2) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

(क) तीनताल में ..... मात्रा होती हैं।

(ख) चारताल में ..... ताली होती हैं।

3) एक शब्द में उत्तर दीजिए :

(i) तीनताल में कितने विभाग होते हैं?

(ii) चारताल में कितनी मात्रा होती हैं?

6.5 तालों की लयकारियाँ

यदि कहा जाए कि लय के बिना संगीत संभव नहीं है तो यह कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। समय की समान गति ही लय कहलाती है। लय एवं लयकारी में अन्तर होता है। लय यदि

संज्ञा है तो लयकारी क्रिया है। लय और लयकारी दोनों एक–दूसरे पर आश्रित हैं। बिना लय के लयकारी भी सम्भव नहीं है। लय ही लयकारी का आधार है। लय अनेक प्रकार की हो सकती हैं परन्तु बहुत समय पहले से ही संगीत विद्वानों ने मुख्य रूप से इसके तीन प्रकार माने हैं।

1. विलम्बित लय 2. मध्य लय 3. द्रुत लय

इसके अतिरिक्त देखा जाए तो अतिविलम्बित या अति द्रुत लय भी होती है परन्तु मुख्य रूप से क्रमशः यह दोनों भी विलम्बित एवं द्रुत के अन्तर्गत आ जाती हैं, इसीलिए इन तीन मुख्य लय प्रकारों को ही सर्वसम्मति से मान्यता प्राप्त है।

अब आप लयकारी को जानेंगे। लयकारी की परिभाषा हम यह दे सकते हैं कि "संगीत में लय के विभिन्न दर्जे करने की क्रिया को लयकारी कहते हैं।" लय के दर्जे करने से तात्पर्य यह है कि कलाकार जब कलात्मक दृष्टि से कभी एक मात्रा में दो, तीन या चार मात्रा तथा कभी दो में तीन, चार में पाँच मात्रा पढ़कर/दिखाकर लय के चमत्कार का प्रदर्शन करता है तो इसी को लयकारी कहते हैं।

लय के समान ही लयकारी के भी विभिन्न प्रकार माने गए हैं परन्तु इसके भी दो मुख्य प्रकार हैं।

एक सीधी लयकारी होती है जिसके अन्तर्गत दुगुन, चौगुन अठगुन आदि आते हैं। दूसरी आड़ की लयकारी होती है जिसके अन्तर्गत तिगुन, आड़, कुआड़ तथा बिआड़ आदि लयकारियाँ आती हैं।

लयकारियों के अन्तर्गत बहुत प्रकार की लयकारियाँ हो सकती हैं परन्तु पाठ्यक्रम के अनुसार आप सीधी लयकारियों को ही जान सकेंगे। विभिन्न तालों में सीधी लयकारी से सम्बन्धित दुगुन, चौगुन को आप जानेंगे। तालों में लयकारी करने से पूर्व आड़ लयकारियों के सम्बन्ध में मात्र एक परिचय जानना आवश्यक सा प्रतीत होता है। सीधी लयकारी के अतिरिक्त अन्य प्रकार की लयकारी को जिसके अन्तर्गत एक मात्रा में डेढ़ मात्रा, तीन मात्रा या सवा मात्रा आदि आते हैं, आड़ की लयकारी कहते हैं। परन्तु व्यापक दृष्टि से वर्तमान में आड़ का व्यापक अर्थ हो चुका है। आड़ का विशेष रूप से यह अर्थ है कि वह लयकारी जिसमें एक मात्रा में डेढ़ या दो मात्रा में तीन मात्रा की लयकारी हो। एक मात्रा में डेढ़ हो या 2 मात्रा में 3 बात एक ही है। इसी प्रकार कुआड़ लयकारी के अन्तर्गत एक मात्रा में सवा मात्रा या 4 मात्रा में 5 मात्रा आती हैं। यह लयकारियाँ कठिन मानी जाती हैं। आप यहाँ तालों में सीधी लयकारी करना जान सकेंगे। तालों के विषय में आप सम्पूर्ण परिचय जान चुके है अब तालों की दुगुन, चौगुन लयकारियाँ जानेंगे।

6.5.1 तीनताल की लयकारियाँ :

ठेका

धा धिं धिं धा	धा धिं धिं धा	धा तिं तिं ता	ता धिं धिं धा	धा
X	2	0	3	X

तीनताल की दुगुनः

धा धिं धिं धा धा धिं धिं धा	धा तिं तिं ता ता धिं धिं धा	
X	2	
धा धिं धिं धा धा धिं धिं धा	धा तिं तिं ता ता धिं धिं धा	धा
0	3	X

दुगुन लयकारी में प्रत्येक दो मात्राओं को एक बना दिया जाता है। जैसा आप पहले जान चुके हैं कि दुगुन लयकारी में एक मात्रा में दो मात्रा बोली जाती हैं। देखा जाए तो दुगुन में ताल दो बार पूरे चक्र के साथ बोली जाती है। दुगुन करते समय मात्राएँ एवं विभागों में कोई परिवर्तन नहीं होता है। मात्र दो बोलों को एक मात्रा मान लिया जाता है जैसा कि आपने तीनताल की दुगुन में देखा। दो मात्रा को एक करने के लिए इसके नीचे अर्द्धचन्द्राकार चिन्ह लगा देते हैं।

दुगुन करने की एक और पद्धति भी होती है जिसे 'एक आवर्तन में दुगुन करना' के नाम से सम्बोधित किया जाता है। आप जान चुके हैं कि पहले जो दुगुन की उसमें ताल का चक्र दो बार अर्थात दो आवर्तन में ताल का प्रयोग किया परन्तु एक आवर्तन में दुगुन करने के लिए मात्रा एवं विभाग तो वैसे ही रहेंगे परन्तु एक विशेष जगह से ताल की दुगुन शुरू की जाएगी तथा ताल की दो बार पुनरावृत्ति नहीं होगी। उदाहरण के लिए आप एक आवर्तन में तीनताल की दुगुन को जानेंगे।

एक आवर्तन में तीनताल की दुगुनः

धा धिं धिं धा	धा धिं धिं धा	धा धिं धिं धा धा धिं धिं धा	धा तिं तिं ता ता धिं धिं धा	धा
X	2	0	3	X

तीनताल की चौगुन लयकारीः

धाधिंधिंधा धाधिंधिंधा धातिंतिंता ताधिधिंधा	धाधिंधिंधा धाधिंधिंधा धातिंतिंता ताधिधिंधा	
X	2	
धाधिंधिंधा धाधिंधिंधा धातिंतिंता ताधिधिंधा	धाधिंधिंधा धाधिंधिंधा धातिंतिंता ताधिधिंधा	धा
0	3	X

एक आवर्तन में तीनताल की चौगुनः

धा धिं धिं धा	धा धिं धिं धा	
X	2	
धा तिं तिं ता	धाधिंधिंधा धाधिंधिंधा धातिंतिंता ताधिधिंधा	धा
0	3	X

तीनताल की चौगुन 13वीं मात्रा से प्रारम्भ होगी तथा 4 मात्राओं में पूरी चौगुन आ जाएगी। चौथे विभाग की चार मात्राओं में चौगुन पूर्ण रूप में आ जाएगी।

6.5.2 चारताल की लयकारियाँः

ठेका

धा धा	दिं ता	किट धा	दिं ता	तिट कत	गदि गन	धा
X	0	2	0	3	4	X

चारताल की दुगुनः

धा धा दिं ता	किट धा दिं ता	तिट कत गदिगन	
X	0	2	
धा धा दिं ता	किट धा दिं ता	तिट कत गदिगन	धा

0 3 4 X

चारताल की दुगुन भी एकताल के समान ही होती है। प्रत्येक दो मात्राओं को एक मात्रा बनाकर ठेके की दो बार पुनरावृत्ति की जाती है।

एक आवर्तन में चारताल की दुगुनः

धा धा	दिं ता	किट धा	धा धा दिं ता	किट धा दिं ता	तिट कत गदिगन	धा
X	0	2	0	3	4	X

चारताल की दुगुन 7वीं मात्रा से प्रारम्भ होगी तथा 6 मात्राओं में सम्पूर्ण दुगुन लयकारी आ जाएगी। लयकारी करते समय अधिक मात्राओं को एक मात्रा बनाते समय सावधानीपूर्वक चिन्ह लगाने चाहिए।

चारताल की चौगुन लयकारीः

धाधादिंता	किटधादिंता	तिटकतागदिगन	धाधादिंता	
X		0		
किटधादिंता	तिटकतागदिगन	धाधादिंता	किटधादिंता	
2		0		
तिटकतागदिगन	धाधादिंता	किटधादिंता	तिटकतागदिगन	धा
3		4		X

एक आवर्तन में चारताल की चौगुनः

धा धा	दिं ता	किट धा	
X	0	2	
दिं ता	तिट धाधादिंता	किटधादिंता तिटकतागदिगन	धा
0	3	4	X

चारताल की चौगुन 10वीं मात्रा से प्रारम्भ होगी। 3 मात्राओं में चारताल की पूरी चौगुन आ जाएगी।

अभ्यास प्रश्न

1) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न :

(i) लयकारी से आप क्या समझते है?तीनताल की दुगुन व चौगुन लयकारी लिखिए।

2) लघु उत्तरीय प्रश्न :

(i) तीनताल की चौगुन लयकारी लिखिए।

(ii) चारताल की दुगुन लयकारी लिखिए।

(iii) लयकारी से आप क्या समझते हैं?

3) एक शब्द में उत्तर दीजिए :

(i) तीनताल की चौगुन किस मात्रा से प्रारम्भ होगी?

(ii) चौगुन लयकारी में एक मात्रा में कितनी मात्रा समाहित होती हैं?

(iii) चारताल की दुगुन कितनी मात्राओं में पूर्ण रूप में आती है?

6.6 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जान चुके हैं कि संगीत के अभिन्न अंग व तालों की उत्पत्ति रागों की रंजकता को बढ़ाने के लिए हुई है। वर्तमान समय में उत्तरी भारत में अनेकों ताल प्रचलित हैं। जैसे – तीनताल, एकताल, चारताल, झपताल, रूपक, धमार, दीपचन्दी आदि। ताल के योग से संगीत में रसानुभूति क्षणिक न रहकर परमानन्द प्राप्ति के साधन में सहायता करती है। पहले गीत रचनाओं एवं तालों से सम्बन्धित सभी अव्यवों को कंठस्थ करना पड़ता था परन्तु तालिपि पद्धति के आने से इस क्षेत्र में क्रान्ति का सूत्रपात हो गया। संगीत के अन्तर्गत आने वाली समस्त स्वर–ताल बद्ध रचनाओं में लय एवं ताल के समस्त अंगों को समझना बेहद आसान हो गया है। गीत रचनाओं में जिस लय एवं ताल में संगत होती है उसमें समान रूप से कायम रहना परम आवश्यक है। विशेष रूप से ख्याल गायन में ताल पक्ष के लिए 'तबला' वाद्य में संगत की जाती है तथा ध्रुपद गायन में 'पखावज' वाद्य में संगत की जाती है। विभिन्न तालों की लयकारी में विभिन्न लयों के मध्यम से चमत्कार का प्रदर्शन किया जाता है। लयकारी द्वारा गीत रचनाओं एवं तालों में कुछ नवीनता आ जाती है जिससे गायन–वादन में नवीन सौन्दर्य की अभिवृद्धि होती है। इस इकाई के अध्ययन से आप लय–ताल एवं लयकारी के सम्बन्ध में सभी तत्वों के समुचित प्रयोग को समझ सकेंगे।

6.7 शब्दावली

- **थपिया बाज** : पखावज पर बजने वाली ताले खुले बोल की तालें होती हैं, जिन्हें थपिया बाज की ताल भी कहते हैं। पखावज वाद्य में थाप का विशेष महत्व है। गीला आटा लगाकर इसकी थाप में विशेष गूंज उत्पन्न हो जाती है। पूरी हथेली से बजने के कारण ही इसकी थाप का विशेष महत्व है और इसे थपिया बाज कहते हैं।
- **धमार गायन :** ध्रुपद एवं ख्याल गायन के मध्य अपनी स्थिति रखने वाला गायन धमार है। ध्रुपद शैली से गाया जाने वाला गीत का प्रकार धमार कहलाता है। विशेष रूप से राधा एवं कृष्ण इस गीत के गायक होते हैं तथा होली के अवसर पर ब्रज की होरी, राधा–कृष्ण एवं गोपियों की होरी, अबीर गुलाल, फाग, पिचकारियाँ, रंगों एवं भीगी चुनरियों का वर्णन इसमें होता है।

6.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

6.3 की उत्तरमाला :

2) एक शब्द में उत्तर दो :

(i) उत्तर : 0 (शून्य)

(ii) उत्तर : X (सम)

(iii) उत्तर : धमार ताल

3)रिक्त स्थानों की पूर्ति करो :

(क) उत्तर : ताल **(ख)** उत्तर : चारताल **(ग)** उत्तर : थपिया बाज

6.4 की उत्तरमाला :

2)रिक्त स्थानों की पूर्ति करो :

(क) उत्तर : 16

(ख) उत्तर : 3,7 पर खाली

3)एक शब्द में उत्तर दीजिए :

(i) उत्तर : 4

(ii) उत्तर : 12

6.5 की उत्तरमाला :

3) एक शब्द में उत्तर दीजिए :

(i) उत्तर : 13वीं

(ii) उत्तर : 4

(iii) उत्तर : 6 मात्राओं में

6.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भातखण्डे, पंडित विष्णु नारायण, (1970), *हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति, क्रमिक पुस्तक मालिका भाग 1 एवं भाग 2,* संगीत कार्यालय, हाथरस।
2. श्रीवास्तव, प्रो0 हरीश चन्द्र, (1990), *राग परिचय भाग 2,* संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद।
3. गोवर्धन, श्रीमती शान्ति, (1995), *संगीत शास्त्र दर्पण भाग–2,* पाठक पब्लिकेशन, इलाहाबाद।
4. श्रीवास्तव, प्रो0 हरीश चन्द्र, (1993), *तबला प्रकाश भाग–1,* संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद।

6.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. श्रीवास्तव, आचार्य गिरीश चन्द्र, (1994), *ताल प्रभाकर प्रश्नोत्तरी,* संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद।
2. कौर, डॉ0 भगवन्त, *परम्परागत हिन्दुस्तानी सैद्धान्तिक संगीत,* कनिष्का पब्लिशर्स, नई दिल्ली।

6.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भातखण्डे ताललिपि पद्धति का विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिए।
2. तीनताल एवं चारताल का सम्पूर्ण परिचय देते हुए इनकी दुगुन एवं चौगुन की लयकारियाँ लिखिए।